सिद्धयोग

संस्थापक
योगयोगेश्वर अनन्तश्री
चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का
प्रतिपादक मासिक

वर्ष–40 : अंक–9
दिसम्बर 2007

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृत-कण

न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति।।

(गीता 3/4)

अर्थात् किसी भी मार्ग के अनुसार कर्मों को स्वरूप से त्यागने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि मनुष्य न तो कर्मों के न करने से निष्कर्मता को प्राप्त होता है और न कर्मों को त्यागने मात्र से भगवत्साक्षात्कार रूप सिद्धि को प्राप्त होता है।

◆ ◆ ◆

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।।

(श्वेताश्वतरोपनिषद् 6/23)

अर्थात् जिसकी परमदेव परमेश्वर में परम भक्ति है तथा जिस प्रकार परमेश्वर में है, उसी प्रकार गुरु में भी है। उस महात्मा पुरुष के हृदय में ही बताये हुए रहस्यमय अर्थ होते हैं।

◆ ◆ ◆

अचरित्वा ब्रह्मचरियं अलद्धा योब्बने धनं।
जिण्ण कोंचा व झायन्ति खीणमच्छे व पल्लल।।

(धम्मपद)

जो किशोर एवं नवयुवा ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करते और युवाकाल में पुरुषार्थ कर धन नहीं कमाते वे वृद्धावस्था में तालाब के किनारे बैठे बूढ़े बगुले के समान चिन्तामग्न रहते हैं।

◆ ◆ ◆

यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति पापहा।
प्रजास्तत्र न मुह्यन्ति नेता चेत्साधु पश्यति।।

श्याम वर्ण, लाल नेत्रों वाला और पापनाशक दण्ड जिस देश में विचरण करता है, उस देश में यदि नेता (राजा आदि शासक) उचित दण्ड देता है तो प्रजा दुःखित नहीं होती।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

वर्ष :40
अंक : 9

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्यौमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

दिसम्बर
2007

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं
नानाधर्माणं पृथ्वी यथौकसम्।
सहस्त्रं धारा द्रविणस्य मे
दुहां धेनुरनपस्फुरन्ती।।

(अथर्व 12/1/45)

अर्थात्

अनेक प्रकार से विभिन्न भाषा बोलने वाले और विविध धर्मों को मानने वाले लोगों को एक परिवार के तुल्य धारण करने वाली पृथ्वी निश्चल एवं शान्त–स्थिर गाय की तरह मुझे ऐश्वर्य की सहस्त्रों धारायें प्रदान करें।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (ब्र.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष
एवं गुरु भाई-बहिन

इस अंक में ...

1. विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज 3
2. सम्पादकीय 8
3. धर्म के लक्षण – श्री अंशुमान देव मानवीय 10
4. भजन – श्री भूपेन्द्र अंकुश 12
5. बाल ब्रह्मचारिणी परम रामभक्त शबरी – श्री वृष्टिकेतु सिंह पुण्डीर 13
5. गुरुभक्ति – श्री वेदव्रत द्विवेदी 16
7. चिंतन – श्री मोतीराम गर्ग 18
8. सपने में – श्री जगदीश राय बंसल 20
9. गुंजन – डॉ. विजय सिंह 21
10. मेरे गुरुदेव : सिद्ध महात्मा की दृष्टि में – श्री केशवदेव उपाध्याय 23
11. मंत्रजप रुपी स्वाध्याय – डॉ. राजकुमारी त्रिखा 26
12. क्रिया योग का द्वितीय अंग : स्वाध्याय – श्री रामेश्वर खण्डेलवाल 29
13. गुरु वन्दना – श्री कन्हैया लाल शास्त्री 31
14. मित्रस्य चक्षुसा समीक्षामहे – श्री रामनाथ सुमन 32
15. साधना का स्वरुप और उद्देश्य – प. लीलापत शर्मा 36
16. कृतज्ञ होना सीखें – डॉ. गोपाल नारायण आप्टे 39

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 120.00
द्विवार्षिक	: रु. 210.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 850.00

● विशेष लेख

सिद्धों का शक्तिपात एवं उपाय प्रत्यय

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

इससे पूर्व पिछले दो प्रकरणों में योगियों को अनुभूति–ज्ञान कराने वाले भव प्रत्यय एवं उपाय प्रत्यय इन दो प्रमुख कारणों का वर्णन किया गया था। भव प्रत्यय में साधक को जन्म से ही योग–ज्ञान की प्रतीति होने लगती है और उसे पौर्वदेहिकबुद्धि–संयोग मिल जाता है, जिसके फलस्वरूप उसे योग के चमत्कारिक अनुभव हो जाते हैं। यह भव प्रत्यय का परिणाम है। इसके अतिरिक्त–

श्रद्धा वीर्य स्मृति समाधि प्रज्ञापूर्वक इतरेषाम्।

इस सूत्र के अनुसार उपाय प्रत्यय का अवलम्ब लेने वाला योगी शनै–शनैः दृढ़तर अभ्यास करता हुआ कालान्तर में प्रज्ञाविवेक को प्राप्त कर लेता है।

इसके अतिरिक्त एक और महान साधक है जो पुण्यकर्माजीवों को पुण्य प्रारब्ध के फलस्वरूप सिद्धों की अनुकम्पा से प्राप्त हुआ करता है। वह साधन इस प्रकार का है जिसे प्राप्त करके मनुष्य अपना जीवन सार्थक कर लेता है। उसका नाम है – **शक्तिपात योग** अथवा **सिद्धयोग**। यह योग मनुष्य को सिद्धानुकम्पा से ही प्राप्त होता है। रही बात यह कि साधक सिद्धयोग का कितना अधिकारी है, वह कब तथा कैसी कृपा प्राप्त करेगा? यह उसकी पात्रता पर निर्भर करता है। वैसे यह साधन इस प्रकार का है जो एक बार प्राप्त हो जाने पर साधक को मोक्ष द्वार तक खींचे ही चला जाता है। जब तक उसकी साधना पूर्ण नहीं हो जाती तब तक उसे बार–बार बुद्धिसंयोग मिलता रहता है। योग शिखोपनिषद् में ऐसा लेख मिलता है–

ज्ञाननिष्ठो विरक्तो वा, धर्मज्ञो विजितेन्द्रियः।
बिना योगेन देवोऽपि, न मोक्षं लभते विधे।।

मनुष्य भले ही ज्ञाननिष्ठ हो, विरक्त हो, धर्मज्ञ हो या जितेन्द्रिय हो किन्तु बिना योग के उसे मुक्ति प्राप्त होती ही नहीं।

आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य पुरुषार्थी बना रहे न कि वह अलहद, आलसी बनकर अपने आपको त्यागी घोषित कर दे। जो लोग बाह्योपचारों को त्याग कर अपने आपको त्यागी घोषित करते हैं वे यथार्थ त्यागी नहीं हैं, प्रत्युत् दम्भी हैं। क्योंकि उनकी इन्द्रियाँ और मन कुछ न कुछ हरकतें करते ही रहते हैं। इन लोगों के लिये भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र ने गीता में अपने मुखारविन्द से स्पष्ट शब्दों में कहा है–

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते।।

कर्मेन्द्रियों पर नियन्त्रण करके जो लोग मन से विषयों का चिन्तन करते रहते हैं वे लोग दम्भी कहलाते हैं।

अतः मनुष्य को चाहिए कि वह कर्मफल की इच्छा न रखता हुआ सत्कर्मों को करता जाये, जिससे उत्तरोत्तर उसकी पुण्यवृद्धि होती रहे। इस विषय में श्रीभगवान ने अपने श्रीमुख से कहा है:-

यज्ञोदानं तपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञोदानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्।।

यज्ञ, दान एवं तप आदि कर्म मनुष्य को पवित्र करने वाले हैं। अतः ये छोड़ने नहीं चाहिए प्रत्युत निष्काम भाव से कर्त्तव्य बुद्धि से करते ही रहना चाहिए।

इस प्रकार जो लोग निष्काम कर्मयोग का अभ्यास करते हैं एवं शुभ कर्मों का आचरण करते हैं वे लोग अवश्य ही सिद्धानुग्रह के भाजन हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त जो लोग अपने मन में वेदान्त की धारणाओं को दृढ़ करते रहते हैं, उनकी पुण्यवृद्धि हो जाने के पश्चात् उन्हें भी सिद्ध संगति प्राप्त हो जाती है। **योगशिखोपनिषद** में कहा गया है -

देहान्ते ज्ञानिभिः पुन्यात्पापाच्च फलमाप्यते।
ईदृशं तु भवेत्तद् भुक्त्वा ज्ञानी पुनर्भवेत्।।
पश्चात् पुण्येन लभते सिद्धेन सह संगतिम्।
ततः सिद्धस्य कृपया योगी भवति नान्यथा।।
ततो नश्यति संसारो नान्यथा शिवभाषितम्।।

निष्काम कर्मयोग के अभ्यास से विविध प्रकार के पुण्यों को उपार्जित करता हुआ व्यक्ति उत्कृष्ट पुण्य बढ़ जाने पर अवश्य ही सिद्धसंगति को प्राप्त कर लेता है और फिर सिद्धानुकम्पा से वह योगी बनता है। जब तक मनुष्य सिद्धानुग्रह भाजन नहीं बन जाता तब तक वह मोक्ष के द्वार तक नहीं पहुँच पाता।

हमारे शास्त्रों में सिद्धों की भी दो श्रेणियाँ मानी गई हैं। एक श्रेणी वह है जिसमें योगी दृढ़तर अभ्यास करते-करते सिद्धियों को पा जाते हैं और '**कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम्**' की सामर्थ्य वाले सिद्ध बन जाते हैं। दूसरे सिद्ध वे लोग हैं जो अनादिकाल से ही सिद्ध हैं, जिनकी सिद्धि में कभी कोई अन्तर नहीं पड़ता। ये लोग अनादिकालीन महासिद्ध कहलाते हैं। मनुष्य किसी भी प्रकार के अनुग्रह का भाजन हो, सिद्ध संगति परम आवश्यक है।

हमारा इतिहास यह बतलाता है कि यहाँ के भक्त समुदाय ने येन केन प्रकारेण

सिद्धानुग्रह को प्राप्त करके ही अपने को सफल बनाया। इसलिए साधक के लिए सिद्धानुग्रह की प्राप्ति परम आवश्यक है। चाहे वह अनादि सिद्ध ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि का अनुग्रह भाजन बने या हिमालय के किसी योगिराज की शरण प्राप्त करे। इस प्रकार सिद्धानुग्रह को प्राप्त करके मनुष्य मोक्ष द्वार की ओर उत्तरोत्तर बढ़ता ही चला जाता है।

कठोपनिषद् में कहा गया है:–

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो, न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्या, तस्यैव आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्।।

यह आत्मा न प्रवचन करने से, न बुद्धि कौशल से और न अत्यधिक शास्त्र श्रवण से ही प्राप्त होता है प्रत्युत "**यमेव एष वृणुते तस्यैव आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्**" अर्थात् जिसको यह स्वयं स्वीकार करता है उसी के द्वारा इस आत्म–तत्व की प्राप्ति हुआ करती है। जिसका यह स्वयं वरण कर लेता है उसके शरीर को अपना मन्दिर बना लेता है। स्वयं वरण हो जाने के बाद मनुष्य का मोक्ष अवश्यम्भावी है। जिस साधक का स्वयं वरण हो चुका है उसे इधर–उधर भटकने की आवश्यकता नहीं रहती, क्योंकि उसका शरीर परमात्मा का घर हो जाता है, उसमें वह अभेद रहा करता है। इन्हीं भावों को गोस्वामी तुलसीदास जी ने निम्नांकित चौपाई में स्पष्ट किया है:–

सोई जाने जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहिं तुम्हहि ह्वै जाई।।

यह तो निर्विवाद सत्य है कि सिद्धानुग्रह को प्राप्त कर मनुष्य अवश्य ही कृतार्थ हो जाता है एवं अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। बहुत से लोग इस प्रकार की बातें करते दिखाई देते हैं कि "भाई! यह तो ठीक है कि तुम्हारे यहाँ गुरुदेव की अनुकम्पा से ध्यान लग जाता है, किन्तु कुछ दिन बाद ही उनकी स्थिति खाली रहती है, इस प्रकार के शक्तिपात से क्या लाभ? जिससे दस–पाँच दिन अच्छी–अच्छी अनुभूतियाँ होने के बाद साधक खाली हो बैठे, जो क्षणिक आनन्द दिखाकर शान्त हो जाये।"

इस बात को हम ऊपर समझा चुके हैं कि सिद्धानुग्रह ही वस्तुतः मनुष्य के परम श्रेय का मुख्य साधन है, किन्तु साधक को इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए कि वह अपनी नियमानुवर्तिता में बिल्कुल पक्का रहे। उपाय प्रत्यय में बताये गए सभी नियमों का यथार्थ रूप में पालन करे। इसी प्रकार का आदेश अखिल लोक पावन जगदात्मा श्रीकृष्णचन्द्र ने गीता में दिया है:–

युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।

जिसका आहार एवं विहार संयमित है, जो अपनी समस्त चेष्टाओं पर पूरा नियन्त्रण रखता है, जो ठीक समय पर सोता है और ठीक समय पर उठ जाया करता है उसके लिए ही

योग दुःखविनाशक और सुख-समृद्धि का दाता हुआ करता है। अतः सिद्धयोग के प्रत्येक विद्यार्थी को चाहिये कि वह जगदात्मा द्वारा आदिष्ट उपरोक्त नियम को 'उपाय-प्रत्यय' के अन्तर्गत समझे और उसका पूर्णतया पालन करे। जो मनुष्य नियमानुवर्तिता का पक्का नहीं है, सोने के समय पर सोता नहीं, जागने के समय जागता नहीं, नियत समय पर भोजन नहीं करता तथा जिसकी कोई भी चेष्टा साधना के अनुकूल नहीं है तो समझ लेना चाहिए कि वह परमात्मा की कृपा का बहुत दुरुपयोग कर रहा है और अपने बहुमूल्य समय को व्यर्थ खो रहा है।

श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कन्ध में भगवान ने अपने श्रीमुख से कहा है

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं, प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं, पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा।।

जिस पुण्यकर्मा जीव को अत्यन्त दुर्लभ मानव शरीर जो कि भवसागर को पार करने के लिए एक सुदृढ़ नौका के समान है, सुलभता से मिल जाये और फिर कर्णधार पूज्य गुरुदेव सिद्धयोग के दाता मिल जाये, अनुकूल वायु के रूप में ईश्वर का अनुग्रह प्राप्त हो जाये फिर भी यदि वह मनुष्य संसार सागर को तरने का प्रयास नहीं करता तो वह एक प्रकार का आत्म-हत्यारा है।

अतः जो लोग स्वस्थ, सुन्दर और सुदृढ़ शरीर वाले है, जो सिद्धानुग्रह के रूप में सामर्थ्यवान गुरु की पूर्ण कृपा प्राप्त कर चुके हैं तथा जिन्हें भगवत् कृपा से सभी साधन उपलब्ध हैं फिर भी यदि वे आलसियों की तरह अपना जीवन व्यतीत करते हैं तो निश्चय ही वे अपने अमूल्य समय को व्यर्थ खो रहे हैं।

उपाय प्रत्यय के अन्तर्गत उन्हीं उपायों का निर्देश किया गया है जिनका अवलम्ब लेना प्रत्येक साधक के लिए निहायत जरूरी है।

ईश्वर के एवं गुरुदेव के परमानुग्रह को प्राप्त करके जो साधक नियमानुवर्तिता का पक्का है, अपने अभ्यास में दृढ़ता से लगा रहता है वह अवश्य ही परम श्रेय को प्राप्त कर लेता है। जो लोग इस प्रकार अभ्यास नहीं करते वे लोग उस महान कृपा को प्राप्त करके भी यथेष्ट लाभ से वंचित रह जाते हैं।

मुझे एक दृष्टान्त याद आ रहा है। सिद्धानुग्रह-भाजन एक व्यक्ति एक स्थान पर ध्यान योग का अभ्यास किया करता था। वह जब भी ध्यान में बैठता अनायास ही उसका ध्यान लग जाया करता था और बड़ी-बड़ी दिव्य अनुभूतियाँ जारी हो जाया करती थी। उसके मन में यह विचार पैदा हुआ कि इस ध्यान योग में कोई विशेष प्रयत्न तो करना नहीं पड़ता, केवलमात्र थोड़ा सा चिन्तन किया और अनुभूतियाँ जारी हो गई। इसमें कोई खास तत्व की बात नहीं है। जब भी हम चाहेंगे ध्यान लगा लेंगे। यह विचार कर उसने अपना अभ्यास छोड़ दिया। श्री गुरुदेव के अनुग्रह से उसका मन इस प्रकार का अभ्यासी बन गया था कि जब भी वह अभ्यास करता अनुभूतियाँ जारी हो जाया करती। अभ्यास छोड़ने के एक महीने पश्चात उसने पुनः मन

को एकाग्र करके देखा तो उसी प्रकार की एकाग्रता हो गई और उसका ध्यान लग गया। इस घटना से उसका यह विश्वास दृढ़ हो गया कि ध्यानाभ्यास में नियमानुवर्तिता का पालन करना जरूरी नहीं है। मैं जब भी अभ्यास में बैठूँगा तभी मुझे ध्यानानुभूतियाँ हो सकती हैं।

यह सोचकर उसने लम्बे समय के लिए अपना ध्यानाभ्यास छोड़ दिया और लौकिक कार्यों में उलझा रहा। परिणामस्वरूप उसकी ध्यानस्थिति जाती रही और वह खाली का खाली रह गया।

यह घटना योग साधकों के लिए एक प्रकार की चेतावनी है। मैं अपने सिद्ध–योग के विद्यार्थियों को यह संकेत कर देना चाहता हूँ कि उनको अपने अभ्यास में किसी प्रकार की कमी नहीं आने देनी चाहिए। प्रत्युत् उत्तरोत्तर अभ्यास को बढ़ाते ही रहना चाहिए। जिससे गुरुदेव द्वारा किया गया शक्तिपात उनके परम श्रेय का हेतु बन सके। साथ ही भर्तृहरि जी के निम्नांकित श्लोक को बार–बार पढ़ना एवं मनन करना चाहिए:–

यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृहंयावच्च दूरे जरा,
यावच्चेन्द्रिय शक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्,
प्रोद्दीप्ते भवने च कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः।।

ईशावस्यमिदं सर्वम् यत्किंच जगत्यां जगता।
तेन त्यक्तेन भुंजीथाः मा गृधः कस्यास्विद्धनम्।।

अर्थात् इस संसार में कण–कण में परमात्मा का वास है। अतः त्याग भाव से वस्तुओं का भोग करो। जो आया है वह अवश्य चला जायेगा। ममता और आसक्ति के भाव को त्याग कर संसार में रहो। तुम सब उठते–बैठते चलते–फिरते, सोते–जागते हर समय अपने गुरुमन्त्र का जाप करते रहो। यदि ऐसा करोगे तो तुम्हारे अन्दर तेज समा जायेगा। उस तेज के आने के बाद किसी के प्रति आसक्ति और मोह नहीं रहेगा। इसलिए अन्तर्ज्योति को प्राप्त करो, ताकि संस्कार चक्र टूट जाये और श्री प्रभुजी के चरणकमल अखण्ड रूप से मिल जायें।

– पूज्य गुरुदेव योगीराज श्री चन्द्रमोहनजी महाराज

सम्पादकीय

क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ का ज्ञान

भारतीय ऋषियों और मनीषियों ने अनादि काल से ही दुःख के स्वरूप एवं उसके परिहार का विचार करके मनुष्य को मुक्ति का मार्ग दर्शाया है। जड़ और चेतन मुख्य रूप से दर्शन शास्त्र के प्रतिपाद्य विषय रहे हैं। इन दो तत्वों पर विस्तार से मनन हुआ है। इसे ही द्रष्टा और दृश्य के रूप में बताया गया है तो कहीं पुरुष और प्रकृति अथवा दृक् शक्ति एवं दर्शन शक्ति के रूप में प्रतिपादित हुआ है। गीता के तेरहवें अध्याय में क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ इन दो तत्वों का निरूपण हुआ है। सांख्य शास्त्र में क्षेत्र क्षेत्रज्ञ को पच्चीस तत्वों के रूप में परिगणित किया गया है। आत्म-तत्व को पुरुष के नाम से कहा गया है। प्रकृति के दो रूप माने जाते है एक परा प्रकृति या मूल प्रकृति या अव्यक्त के रूप में। दूसरा अपराप्रकृति। परा प्रकृति विकार रहित है व्यापक है तथा अनादि और अविनाशी है जबकि अपरा प्रकृति अष्टधा है जो विनाशी है तथा परिवर्तन शील है इसी अपरा प्रकृति का ही बन्धन व मोक्ष हुआ करता है। सांख्य शास्त्र में इन पच्चीस तत्वों के विषय में आया है कि उन पच्चीस तत्वों को जो तत्व से जानता है वह चाहे जटाधारी हो, मुण्डित संयासी हो या शिख सूत्र व गृहस्थाश्रमी हो, वह प्रकृति के बन्धन से मुक्त हो जाता है। श्रीमद् भगवद्गीता में सांख्य मत के पुरुष प्रकृति के ज्ञान को ही क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के नाम से प्रतिपादित किया है। संसार में जितने भी जड़-चेतन पदार्थ हैं वे सब पुरुष प्रकृति के संयोग से ही हैं। क्षेत्र क्षेत्रज्ञ दर्शन शास्त्र का एक ऐसा विषय है जो अनादि काल से ही ऋषियों के मनन चिन्तन का विषय रहा है। यही विषय दर्शन शास्त्र में विभिन्न मत के रूप में प्रतिपादित हुआ है। सांख्य का मूल प्रकृति अव्यक्त तथा परा प्रकृति के रूप में निरूपित है जो अविकारी है, अनादि है व्यापक है। उसी मूल प्रकृति से ही अष्टधा प्रकृति का सृजन होता है जिसका बन्धन मोक्ष हुआ करता है। यह अष्टधा प्रकृति विकारी है, परिवर्तन शील है इसीलिये सुख दुःख का दाता है। अतः यह दोषयुक्त माना जाता है। ब्रह्म निर्दोष है, अविकारी है इसलिये तत्वज्ञानी व योगी के लिये कहा जाता है कि वे इसी निर्दोष ब्रह्म में स्थित रहते हैं- '**निर्दोष हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः**' पुरुष प्रकृति के विवेक से चित्त स्थिरता को प्राप्त करता है। अध्यात्म की पढ़ाई भी लौकिक पढ़ाई की तरह ही है। जिस प्रकार से लोक में डाक्टर, इंजीनियर बनने के लिये एक विशेष पाठ्यक्रम की पढ़ाई करके उसमें उत्तीर्ण होना पड़ता है तभी वह तत्तद पद को प्राप्त किया करता है। ऐसे ही अध्यात्म-योगी की आन्तरिक पढ़ाई है जिसका प्रारम्भ मन की एकाग्रता से हुआ करता है। शान्ति प्राप्त करने का उपाय अध्यात्म ज्ञान में प्रवीण होना है। गीता के बारहवें अध्याय में भक्ति योग के प्रकरण में भगवान ने एक विशेष क्रम से इस बात को समझाया है निम्न श्लोक द्रष्टव्य है-

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासात् ज्ञानाद् ध्यानम् विशिष्यते।
ध्यानात् **कर्मफलत्यागः** त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्।।

अर्थात् अभ्यास से ज्ञान श्रेष्ठ है। श्रेष्ठता को पाने के लिये निचली सीढ़ी की योग्यता प्राप्त करना आवश्यक होता है। बार–बार चित्त की स्थिरता के लिये प्रयत्न करने का नाम ही अभ्यास है। गुरुमन्त्र का जाप तथा धारणा का अभ्यास पूरा कर लेने के पश्चात ही स्फुट ज्ञान का उदय होता है इसी से साधक को अन्तर्जगत में प्रवेश मिलता है। इसलिये कहा गया है कि अभ्यास से ज्ञान श्रेष्ठ है अर्थात् अभ्यास का क्रम पूरा कर लेने के पश्चात ज्ञान अथवा निष्ठा में परिपक्वता आती है। '**ज्ञानाद् ध्यानम् विशिष्यते**' । ज्ञान से ध्यान श्रेष्ठ है। यदि इस बात को योग की भाषा में कहें तो धारणा की सफलता के पश्चात् ही ध्यान में चित्त स्थिर होने लगता है। ध्यान योग ही अध्यात्म ज्ञान प्राप्ति का साधन है। ध्यान से ही सम्पूर्ण शुभाशुभ कर्मों का बीज नष्ट होने लगता है। इसीलिये कहा गया है– '**ध्यानाद् कर्मफल त्याग**:' कर्मजाल व कर्मसंस्कार ही सब दुःखों के कारण होते हैं। इस दुःख के परिहार का एक ही साधन है – 'वह है ध्यान योग। ध्यानयोग से सम्पूर्ण शुभाशुभ कर्म व कर्मफल नष्ट हो जाते हैं। तदनन्तर ही मनुष्य को शान्ति मिला करती है। ध्यान योग से ही दिव्य दृष्टि का उन्मीलन होता है इसे ही ज्ञानचक्षु कहते हैं। इसी से अन्तर्ज्ञान का उदय होता है। इसी का नाम अन्तर्ज्ञान है योगशास्त्र में आया है– '**योगात् सम्प्रज्ञायते ज्ञानम्**' योग से ज्ञान उत्पन्न होता है। इस प्रकार के ज्ञान की उत्पत्ति वाले योगी ही निष्काम कर्म योगी होते हैं, अन्य कोई नहीं। योगी ध्यान योग में प्रवीण होता है वह आत्मा में ही रमण करने वाला बन जाता है इसलिये वह कर्म करते हुये भी कर्मफल से बंधता नहीं है। योगेश्वर भगवान श्री कृष्णचन्द्र जी ने गीता में कहा है– **न मां कर्माणि लिम्पन्ति, न मे कर्मफलेस्पृहा।** हे अर्जुन! मेरी कर्मफल में स्पृहा (लिप्सा) नहीं है इसलिये मुझे कर्मबन्धन में नहीं डालते। इसी प्रकार समाधिवान व आत्मज्ञान वाले योगी को कर्म बन्धन में नहीं डाल सकते। आत्मतत्व को भौतिक चक्षुओं से कदापि देखा नहीं जा सकता। उपनिषद (श्वेताश्वतर) में आया है– **न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य। न चक्षुषा पश्यति कश्चनैतम्।।**

यदा हृदिस्थं मनसा य एनम्। एवं विदुरमृतास्ते भवन्ति।।

अर्थात् आत्मतत्व भौतिक चक्षुओं से दृष्टिगत नहीं हो सकता है इसलिये मनुष्य इसे देख नहीं पाता है। ध्यान योग के द्वारा मन को एकाग्र करके योगी इसे देख पाते हैं। जो इस प्रकार से आत्मतत्व का साक्षात्कार कर लेते हैं वे अमृतत्व को पा जाते हैं– अमर हो जाते हैं। क्षेत्र क्षेत्रज्ञ के प्रकरण में गीता में भगवान उपनिषद् की बात को पुष्ट करते हुए कहते हैं कि जो ज्ञान चक्षु के द्वारा क्षेत्र क्षेत्रज्ञ के भेद को, पञ्चमहाभूतों को, तन्मात्राओं को अष्टधा प्रकृति का साक्षात्कार करके जान लेते हैं वे परम गति को प्राप्त हो जाते हैं। इस प्रकार से क्षेत्र क्षेत्रज्ञ, पुरुष प्रकृति, आत्म–अनात्म तत्व उपनिषद व गीता के प्रधान प्रतिपाद्य विषय हैं। योगीजन इसी का साक्षात्कार कर तत्व ज्ञान से युक्त होकर परम पद को पा जाते हैं। क्षेत्र क्षेत्रज्ञ का नाम ही ज्ञान है शेष सब अज्ञान कहे गये हैं। यह दिव्य ज्ञान, ज्ञान चक्षु के प्रकट होने पर ही मिल सकता है। ज्ञान–चक्षु को विवेक ख्याति भी कहते हैं। इसी ख्याति की प्राप्ति से मोक्ष होता है। गीता में इसे ही कई स्थलों पर बुद्धि–योग के नाम से समझाया गया है। □□□

धर्म के लक्षण

अंशुमान देव मालवीय

आज मनुष्य जहाँ स्वयं को सुखी करने के लिये अपने परिवार को सुख देने के लिये असत्य का साथ दे रहा है। वह इस बात से बेफिक्र है कि आखिर जिस सुख के लिये वह इतना परेशान है वह आखिकार इसी जगह रह जायेगा और मनुष्य उसके चलते उसके भोगदण्ड स्वरूप चौरासी लाख योनि में भटकता रह जायेगा। इसलिये समय रहते अपने अस्तित्व की पहचान करना तथा अपने इस जीवन को सार्थक बनाना इस जीवन का असल उद्देश्य है। मनु महाराज के मतानुसार मनुष्य के जीवन को सार्थक बनाने के दस लक्षण है। आइये इन दस लक्षण के विषय में जाने और अमल करें।

घृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।

धीर्विधा सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्।।

1–धैर्य 2–क्षमा 3– दम 4–अस्तेय 5– पवित्रता 6– इन्द्रियों को वश में रखना 7– बुद्धि 8– विद्या 9– सत्य 10– अक्रोध

1. **धैर्य**– अधिकांश देखा यह गया है कि मनुष्य विपत्ति के समय अपने धैर्य को खो देता है और कुछ ऐसा कार्य कर देता है जो कि उसके हित्त में तथा समाज के और उसके परिवार के हित में नहीं होता है। इसलिये हमें बुरी से बुरी स्थिति में भी धैर्य रखते हुये "भगवत् नाम का जाप सदैव करना चाहिये।

2. **क्षमा** – अगर कोई हमारे पीछे या आगे हमारे लिये अपशब्द या बुरा हमारा चाह रहा है तो उस वक्त हमें सहनशीलता रखते हुए उसे क्षमा कर देना चाहिये। और भगवान के ऊपर छोड़ देना चाहिये। एवं भगवत् नाम का जाप सदैव करना चाहिये।

3. **दम** – काम, क्रोध, मद, लोभ इत्यादि पाप को अपने मन में पनपने न देना इससे मनुष्य के अन्दर कोई बुराई नहीं आयेगी।

4. **अस्तेय** – यहाँ अस्तेय का अर्थ है चोरी न करना। जो भी है वह मेहनत और ईमानदारी से पाना चाहिये।

5. **पवित्रता** – पवित्रता हमें शरीर से रखने के साथ–साथ अपने आन्तरिक एवं मानसिक रूप से रखनी चाहिये।

6. **इन्द्रियों को वश में रखना** – जो मनुष्य अपनी इन्द्रियों को वश में रखकर कोई भी कार्य करता है उसका वह कार्य निश्चय ही सफल होता है।

7. **बुद्धि** – यहाँ बुद्धि का उपयोग विवेक से है। जिस सत्पुरूष के पास विवेक होता है

वह अपना सभी कार्य निश्चय ही सही ढंग से करता है उसे सभी जगह सफलता मिलती है।

8. **विद्या** – विद्या का असल उद्देश्य ज्ञान से है। ज्ञान वह है जो आजिविका चलाने के ज्ञान तक ही सीमित नहीं रहता अपितु ब्रह्म ज्ञान का भी बोध कराता है।

9. **सत्य** – जीवन में अपने सभी कार्यों को करते हुये अपने व्यवहार में सत्य का ही उपयोग करना। मानव के लिये सबसे बड़ा हितकारी है।

10. **अक्रोध** – अक्रोध का अर्थ है क्रोध न करना। मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है क्रोध और जो इसे अपने वश में कर लेता है वह अजेय हो जाता है उसे कोई पराजित नहीं कर सकता है। इसलिये मनुष्य को क्रोध नहीं करना चाहिये।

जो मनुष्य इन बातों को ध्यान में रखकर अपने सद्गुरु देव भगवान की आरती पूजन एवं कृपा चरित्र का वर्णन सदैव करता है। उसे जीवन में कोई भी कष्ट नहीं होता है और उसे सद्गुरु की कृपा अवश्य ही प्राप्त होती है और उसके इस धराधाम पर जन्म लेने की मुख्य उद्देश्य की पूर्ति अवश्य होती है।

आप सभी सुयोग्य पाठकों से मेरा सविनय निवेदन है कि लेख की त्रुटि को न ध्यान देकर इसके पवित्र भाव को ग्रहण करने की कृपा करें।

❑❑❑

अरे, मृत्यु जब अवश्यम्भावी है तो कीट–पतंगों की तरह मरने के बजाय वीर की तरह मरना अच्छा है। इस अनित्य संसार में दो दिन अधिक जीवित रहकर भी क्या लाभ? जराजीर्ण होकर थोड़ा–थोड़ा करके क्षीण होते हुए मरने के बजाय वीर की तरह दूसरों के अल्प कल्याण के लिए भी लड़कर उसी समय मर जाना क्या अच्छा नहीं है?

–स्वामी विवेकानन्द

भजन

—भूपेन्द्र 'अंकुश' जलेसर

जब–जब भी बढ़ते शैतान, लेकर मुरली तीर कमान,
नीली छतरी से आता है सांई लीलाधर। टेक।।
परम स्वतन्त्र फिर भी जनमे वो जेल में।
हारे–हरावे अपने जीवन के खेल में।।
बनने ज्ञानी और अनजान, लगने छोटा और महान।।
नीली छतरी——1
यशुदा है दूजी माई, पहली है देवकी।
गोपी से बोली बोली जब तक फरेब की।।
भरने मीठी–मीठी तान, करने भक्तों का कल्यान।।
नीली छतरी——2
दूध के बहाने कभी पूतना को मारता।
दही के बहाने कभी ग्वाल को पुकारता।।
तजने दुर्योधन पकवान, खाने छिलके केर, मिठान।।
नीली छतरी——3
माखन को खावे कभी मिट्टी के खेल तो।
छोड़ता है गोपी, करे कुब्जा से मेल तो।।
कबहू श्याम कभी हनुमान, होने दो दो की सन्तान।।
नीली छतरी——4
गोपी से माँगे दही मानो गरीब है।
नरसी का भात भरता कैसा अजीब है।।
दिखने कठिन और आसान, लिखने गीता ग्रन्थ महान।।
नीली छतरी——5
सारथी कहावे, गद्दी विप्र को प्रदानता।
भिन्न–भिन्न कर्म करे मिली ना समानता।।
ऊखल–नागपाश भक्तान–बन्धन बँधने में नादान।।
नीली छतरी——6

बाल ब्रह्मचारिणी परम राम भक्त शबरी

–दृष्टिकेतु सिंह पुण्डीर–

जन्म:– शबरी का जन्म भीलवंश में हुआ था। उसके संस्कार शुभ थे। बाल्यकाल में पशुओं के प्रति हिंसा देखकर वह छटपटा जाती थी। पक्षिओं को गगन में विहार करते देख कर वह खुश होती थी लेकिन जब तीर से बिंधा हुआ उस का शरीर देखती तो उस की आत्मा चीत्कार कर उठती। उस का मन अशान्त हो जाया करता था। वह आठ–आठ आंसू रोने लगती थी। वह कहने लगती, 'हे भगवन्! मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? कुछ समझ में नहीं आता, दया करो नाथ।'

शबरी के विवाह की तैयारी और उस का घर से भागना:– शबरी जवान हुई। चिन्ता ने उस का साथ नहीं छोड़। उसकी आत्मा को झक झोण डाला। जय शंकर प्रसाद ने उचित ही कहा है.

ओ चिन्ता की पहली रेखा, अरी विश्व वन की प्याली।

ज्वालामुखी विस्फोटक भी ऐसा, प्रथम कम्प सी मतवाली।।

चिन्ता चिता के समान होती है। शबरी के विवाह की तैयारी होने लगी, पर उसका मन अशान्त होने लगा। उस का वर सुन्दर था और लक्ष्य साधने में भी निपुण था। वह एक ही बाण से दो पक्षियों को मार सकता था। वर की प्रशंसा से शबरी के प्राण छटपटाने लगे। वह एकान्त में जाकर फूट–फूट कर रोने लगी और प्रभुजी से प्रार्थना करने लगी, 'हे दयामय! हे सर्वव्यापी करूणामय भगवान! मुझ नीच और अभागिनी पर दया कीजिए। मैं इस पापपूर्ण जीवन को सह नहीं पाऊगी। भोले–भाले जीवों के कोमल कंठ पर तेज छुरी चलते, उन्हें चीत्कार करते और छटपटाते देखने की अपेक्षा मृत्यु की गोद में सो जाना मैं अच्छा समझती हूँ पर आप की शरण में हूँ। आप मेरी रक्षा कर लें। मुझे उबार लीजिए नाथ।'

अर्द्ध रात्रि का समय! सन्नाटा छा रहा था और तारे चमक रहे थे। चांदनी जमीन पर छिटक रही थी। शबरी चुपचाप घर से निकली और घने वन में विलीन हो गई। ऊबड़–खाबड़ मार्ग वह भी कंटकों से भरा हुआ। उसने कोई चिन्ता न की। जंगली जानवरों का उसे किंचित मात्र भी ध्यान नहीं था। भय नहीं था। उसे एक भय था कहीं वह माता–पिता के हाथ न आ जाये। वह हिंसक और निर्मम जीवन से बचना चाहती थी। राम भजन में अपना जीवन समाप्त करना चाहती थी।

मतंग ऋषि से शबरी की भेंट:– प्रातः काल हुआ। शबरी भागते–भागते थक गई थी। वह एक वृक्ष के पास सिर थाम कर बैठ गई। मतंग ऋषि स्नान के लिए जा रहे थे। शिष्य उनके

साथ थे। ऋषि शिष्यों से कह रहे थे, ' भगवान की प्राप्ति के लिए भगवान के बन जाओ। अपना तन, मन, प्राण, बुद्धि, अहंकार आदि सब कुछ प्रभु पर अर्पित कर दो। भगवान का ध्यान, भगवान के नाम का जप और भगवान की कथा का श्रवण मनन उन्हें प्राप्त करने का सरल और सुगम साधन है। तुम शुद्ध हृदय से उनकी ओर एक पग लोगे तो वे महिमामय दया निधान प्रभु सहस्त्र-सहस्त्र पग तुम्हारी ओर बढ़ आयेंगे।' यह सुनकर शबरी कृतार्थ हो गई।

शबरी ने महात्माओं से दूर एक छोटी कुटी बना ली। वह पम्पासर तक के समूचे क्षेत्र में चक्कर लगाती। कंकड़ियाँ बीनती तथा ऋषि तथा उनके शिष्यों के लिए सूखी लकड़ियाँ बीन कर रख आती। इससे ऋषि वर्ग बहुत चकित था। शिष्यों ने पहरा देना शुरू किया और शबरी पकड़ी गई। उसे मतंग मुनि के सामने पेश किया गया। शबरी डर रही थी। उसने दूर से ही मुनि को साष्टांग प्रणाम किया। वह हाथ जोड़े खड़ी थी। वह बोल नहीं पा रही थी और कांप रही थी। मतंग मुनि ने ध्यान से देखा और कहा, 'बेटी! तू मेरे पास ही रह। मैं तेरे लिए कुटिया बनवा देता हूँ। तू यहीं रह कर अपने योग्य सेवा तथा भगवान की प्राप्ति के लिए निरंतर साधन भजन करती रह।'

शबरी ने रोते-रोते कहा, 'मैं निश्चय ही भाग्यशालिनी हूँ और मेरा भाग्य सूर्य आज उदित हुआ है जो आपने मुझे नीचातिनीच परम मूर्ख शूद्रानारी को अपने चरणों के समीप रख कर दयामय प्रभु की प्रीति का अवसर प्रदान किया।' ऋषि की कुटिया से थोड़ी ही दूर, वह एक कुटिया में रहने लगी और ऋषियों के उपदेश सुना करती थी। वह अपने को धन्य समझती थी।

स्नान करके लौटते हुए एक महात्मा से उसके शरीर का छू जाना:- एक दिन की बात है कि शबरी भगवान के ध्यान में लीन थी और पम्पा सरोवर से लौट रही थी। उसे अपने शरीर का भी ध्यान नहीं था। स्नान से लौटते हुए एक महात्मा से उसका शरीर छू गया। मतंग ऋषि के शिष्य नाराज थे कि एक शूद्रा को आश्रम में रख लिया है। ऋषि क्रोध से काँपने लगे और कहने लगे, ' अत्यंत नीच कहीं की! छू दिया मुझे पुनः स्नान करना पड़ेगा। हम लोगों की यह दुर्दशा मतंग मुनि करवा रहे हैं।' ऋषि के श्रम का भी उसे पता नहीं चला क्योंकि वह भगवान के ध्यान में लगी थी।

पम्पा सरोवर के जल का रक्तवर्ता हो जाना:- ऋषि पुनः पम्पा सरोवर स्नान करने गये लेकिन वे आश्चर्य में डूब गये। उन्होंने देखा कि सरोवर का स्वच्छ जल रक्तिम हो गया है और उस में कीड़े रेंग रहे हैं। ऋषि बिना स्नान किये ही उदास लौट आये।

मतंग मुनि की मृत्यु का समय निकट आने पर शबरी की दशा:- शबरी ने कहा, 'मुनिनाथ! मैं आपके बिना नहीं जी सकूँगी। मेरे आधार आप ही हैं। ऋषियों की सेवा और श्री भगवान का ध्यान तथा भजन करने का जो पुण्यमय अवसर मुझे प्राप्त हुआ है और मैं दयामय प्रभु को प्राप्त करने के लिए व्याकुल हो रही हूँ, वह आपके चरण कमलों में निवास करने का ही फल है। आप के बिना मेरा उद्देश्य पूर्ण नहीं होगा और श्री भगवान की प्राप्ति के बिना मैं यह अधम शरीर रख कर ही क्या करूँगी? आपके ही साथ मैं भी अपना नश्वर शरीर छोड़ दूँगी।'

मतंग मुनि ने शबरी को समझाते हुए कहा, 'बेटी! धीरज रख। अधीर मत हो। मेरे प्राणों का समयआ गया है। मुझे जाना ही चाहिए, पर तू अभी यहीं रह कर पूर्ववत साधन भजन करती रह। अखिल लोकपति भगवान विष्णु ने अयोध्या नरेश दशरथ के यहाँ अवतार लिया है। वे दशरथ नंदन श्री राम अपने पिता की आज्ञा से चौदह वर्ष के लिए वन में आये हैं। वे भुवन मोहन करूणा सिन्धु श्री राम अपने अनुज श्री लक्ष्मण के साथ यहाँ शीघ्र पधारेंगे। तू उन का दर्शन करके कृतार्थ होगी। तेरी साधना सफल हो जायेगी।'

शबरी का विश्वास और उसे श्रीराम के दर्शन:– शबरी को मुनि के कथन पर पूर्ण विश्वास था। शबरी आनंदमग्न रहने लगी। वह दूर तक रास्ता साफ कर आती। कोई पत्ता भी खड़कता तो वह चौंक पड़ती कि कहीं श्री राम तो नहीं आ रहे हैं। अब राम अपने भाई के साथ शबरी की कुटिया के दरवाजे पर आकर खड़े हो गये। शबरी उनके सौंदर्य को देख कर आत्म विभोर हो गई। उसने प्रभु के चरणों को पकड़ लिया और उनके मुख की तरफ देखने लगी। उसकी वाणी अवरुद्ध थी। उसने दोनों भाईयों के चरण धोये और उन्हें मीठे बेर खिलाये। श्री राम ने शबरी को नवधा भक्ति के विषय में बताया।

ऋषियों का आगमन और पम्पा सरोवर के जल का शबरी द्वारा स्पर्श करना और जल का पुनः निर्मल हो जाना:–

ऋषियों का समुदाय भी भगवान का दर्शन करने शबरी की कुटिया के पास आ गया। एक साथ ऋषि समुदाय पुकार उठा, 'भक्तिमती शबरी तू धन्य है।' ऋषियों ने पम्पा सरोवर के जल को रक्त में बदलने और उसमें कीड़े पड़ने की बात कही तो लक्ष्मण जी ने उन्हें बताया, 'आप लोगों ने परम भगवद भक्त सती शबरी का अपमान किया है। इसी कारण पम्पासर का जल सर्वथा दूषित हो गया है। साध्वी शबरी के पुनः स्पर्श करते ही वह जल पूर्ववत् निर्मल हो जायेगा।'

ऋषियों के आग्रह और श्री राम के आदेश से शबरी ने सरोवर के जल का स्पर्श किया और उसका जल पहले की भांति स्वच्छ हो गया। जैसे ही भगवान उसकी कुटिया से निकलने लगे उसने अपने पार्थिव शरीर का त्याग कर दिया। ऐसी भगवान भक्त हमेशा अमर रहेगी।

तेजोऽसि सहोऽसि बलमसि भ्राजोऽसि
देवाना धामनामसि विश्वमसि विश्वायुः।

अर्थात् हे अग्न ! तुम तेज हो, तुम उत्साह हो, तुम बल हो, तुम दीप्ति हो, तुम ही चराचर विश्वरूप हो, तुम ही विश्व के जीवन हो।

गुरुभक्ति

प्रेषक--वेदव्रत द्विवेदी (उमापुर)

परम पुरुष सत्गुरु भगवत हैं परम हंस अवतार।
नतमस्तक बन्दन करूँ प्रेम भक्ति भण्डार।।
रैन दिवस बन्दन करूँ सत्गुरु तव-चरणार।
श्रद्धा पूर्ण मम् वन्दना, प्रभू करो स्वीकार।।
चरण कमल गुरुदेव के, पूजे मन चित लाय।
प्रेम मगन निसदिन रहे और परम पद पाय।।
श्री सद्गुरु के चरण की महिमा बहुत महान।
जिन चरणन की ओट में पावें जीवन मान।।
भवसागर गंभीर में सूझत वार न पार।
दासनदास को काढ़ लो बनकर काढ़नहार।।

सद्गुरु कल्याण-मार्ग के पथ प्रदर्शक के साथ-साथ वे जीवभाव तथा देहभाव को मिटाकर जीव को ब्रह्मरूप में प्रतिष्ठित करने के लिए सदा प्रयत्नशील रहते है तथा साधकों के मन में प्रभु के प्रति कृतघ्नता का भाव उत्पन्न न हो इसके लिए नाम के सुमिरन तथा गुरुरूप के ध्यान की प्रेरणा देते रहते है।

सद्गुरु के शरीर की सेवा-पूजा से बढ़कर कोई पवित्र कार्य नहीं है, इस बात को ठीक तरह समझ लेना चाहिए कि वे साक्षात् परब्रह्म है। देह रहते हुए भी वे विदेह है। पर हमें पूजा-अराधना का आलम्बन प्रदान करने के लिए शरीर धारण किए हुए है।

सद्गुरु देखने मे हमारे समान ही देहधारी होते है। उन्हे पहचान पाना, उनके प्रति श्रद्धा और उन पर विश्वास होना अत्यन्त कठिन होता है। यह वास्तव में उनकी ही कृपा पर निर्भर है। किन्तु हम जड़ बने बैठे तो नही रह सकते। हमें ईश्वर की ओर से जो बल-बुद्धि प्राप्त है उसका उपयोग करके हमें स्वयं भी उन्हें पहचानने का प्रयत्न करना चाहिए।

हमारे पूछे हुए आध्यात्मिक प्रश्नों का सही समाधान जिस महापुरुष से हो जाय, जो शब्द और उसका अर्थ अर्थात् नाम और रूप दोनो से हमें परिचित करा दे, जान लेना चाहिए कि यही सद्गुरु है। शिवजी ने पार्वती को प्रभु की यही पहचान बताई थी-

जासु कृपा अस भ्रम मिटि जाई। गिरिजा सोई कृपाल रघुराई।।

अर्थात् जिनकी कृपा से ब्रह्म-राम, सगुण-निर्गुण आदि के विषय में भ्रम मिट जाता है वे ही कृपालु रघुराई (जीवों के स्वामी) है।

अर्थात् जिसके शरीर में सद्‌गुरु का स्मरण होता है उसे जान लो कि वह मुक्त ही है। ऐसे भगवान के भक्त और भगवान में कोई अन्तर नहीं होता, यदि सद्‌गुरु की कृपा हो जाये, वे मिल जायें तो उनसे उपदेश (दीक्षा) प्राप्त होते ही साधना का श्री गणेश प्रारम्भ हो जाता है।

वह परा विद्या हमें केवल सद्‌गुरु से ही प्राप्त हो सकती है क्योंकि उनके अतिरिक्त उसे देने का किसी को भी अधिकार नहीं है। बात बड़ी स्वाभाविक है, जो वस्तु जिसके पास होती है वह उसी से प्राप्त हो सकती है। उसे जानने वाला कोई साधक भूल से किसी को बतला भी दे तो वह फलवती नहीं होगी।

सोना काई नहिं लगे, लोहा घुन नहि खाय।
भला बुरा जो गुरु भगत, कबहुँ नरक नहि जाय।।

जैसे सोना कितने भी समय तक पानी में पड़ा रहे, उसमें काई नहीं लग सकती और लोहे को कभी घुन नहीं खा सकता, वैसे ही सद्‌गुरु देव भगवान से नाम का उपदेश लेने वाला भक्त कभी भी नरक नहीं जाता।

सद्‌गुरुदेव की इस महिमा की बराबरी कर सकने वाला देव-देवता तो क्या, स्वयं रचनाकार भी नहीं है, रचनाकार भी जीव की उर्ध्वगति गुरुरूप धारण करके ही करते हैं। सारे ब्रह्माण्ड में सबसे बड़ा हितैषी सम्बन्धी, प्यारा सहायक तथा यमदूतों से भी रक्षा करने वाला सारी बला से बचाने वाला केवल सद्‌गुरु ही है।

सद्‌गुरु ने हमें नाम-सुमिरन-भजन की अनमोल सम्पदा प्रदान कर दी अब किसी भी वस्तु की आवश्यकता नहीं। यह सम्पत्ति उसी को सुलभ है जो सद्‌गुरु की आज्ञा मानकर नाम, सुमिरन और भजन में लीन रहता है, वही सच्चा शिष्य है। शिष्य बनना कोई सरल काम नहीं है। शिष्य की परिभाषा यही है कि जो शासन करने योग्य हो, जो गुरु के शासन को हृदय से स्वीकार करे। अविचल भक्ति केवल सद्‌गुरु कृपा से ही सम्भव है।

लब्ध्वा कथञ्चिन्नरजन्म दुर्लभं
तत्रापि पुंस्त्वं श्रुतिपारदर्शनम्।
यस्त्वात्ममुक्तौ न यतेत मूढधीः
स ह्यात्महा स्वं विनिहन्त्यसद्ग्रहात्।।

यदि किसी प्रकार (पुण्य विशेष से) परम दुर्लभ मानव जन्म पाकर उसमें भी सम्पूर्ण श्रुतियों का आद्योपरान्त अनुशीलन करने वाले पुरुष-शरीर को पा लेने पर भी जो मूढचित्त मानव अपनी मुक्ति के लिए प्रयत्न नहीं करता, वह आत्महत्यारा है। वह अनित्य भोगों में फँसे रहने के कारण अपने आपको विनाश के गर्त में गिरा रहा है।

'चिंतन'

मोती राम गर्ग (अलूपुर)

चिंतन शब्द का अर्थ है— अपनी ब्रह्म स्वरूप आत्मा का एकाग्र भाव से चिंतन करना। अंग्रेजी के शब्द MADITATION का मतलब भी ध्यान द्वारा अपनी चेतन आत्मा का चिंतन करना है।

कबीरा मन तो एक है, भावे तहां लगाए।
भावे हरि का चिंतन कर, भावे विषय कमाए।।

यदि मन विषयों में आसक्त है तो वह बन्धन कारक है और यदि मन प्रभु में आसक्त है तो वह मोक्ष का कारण है। इसलिये मन ही अपना शत्रु है और मन ही अपना मित्र है। इस मन रूपी चंचल घोड़े को लगाम से कसकर कमल रूपी हृदय में, जो ब्रह्म का अभिन्नांश है, अचल स्थापित करना चाहिये और उसी आत्मा का चिंतन करता रहे। जब अर्जुन ने कृष्ण से मन की चंचलता के बारे में जानना चाहा कि इस को हृदय में कैसे रोका जाये तो श्री कृष्ण ने कहा– "**अभ्यास वैराग्याभ्याम तन्निरोध**:", यह अभ्यास के द्वारा सम्भव है। यदि हम बाहर के विषयों का चिंतन न करे तो मन अपने आप आत्मा का चिंतन करेगा। बाहर के विषय विष समान है और भीतर प्रभु का अमृत मयी दरबार है। यह भौतिक संसार असत्य है, नाशवान, क्षण भंगुर और अस्थायी है। मिटता और बनकर बिगड़ता रहता है। यहां कुछ भी स्थायी नही। मनुष्य आता है और चला जाता है। परन्तु अध्यात्मिक जगत शुद्ध चेतन और शाश्वत् है, जो मिटता बुझता नही।

हम अज्ञानतावश बाहरी वस्तुओं का चिंतन करते रहते हैं। क्षणिक सुख के लिये सब प्रयत्न करते हैं, हम अपने शरीर की बनावट, रंग रूप, यौवन को देखकर मुग्ध होते रहते हैं। जो भी कार्य करते है, शरीर की सुन्दरता बनाए रखने, मान प्राप्ति के लिए, धन प्राप्ति के लिये सभी कार्य करते है। परन्तु आत्मा जिसके बगैर शरीर का अस्तित्व सम्भव नही, उस के लिये कुछ भी नही करते सोचते। यदि शरीर में आत्म चेतना नही रहेगी तो शरीर मृत हो जायेगा। इस लिये मानव का परम धर्म है आत्मा का चिंतन करना।

सभी की इच्छा होती है कि हम लम्बी जिंदगी जीयें, परन्तु प्रकृति के विधान किसी को बीमारी और मृत्यु से बचने नहीं देते। जीवन की जितनी खुशियाँ है वे शुरू होने पर समाप्त भी होती है, परन्तु यदि श्री कृष्ण भावना मृत (krishan conciousness) में जायेंगे तो उनकी समाप्ति नही होती। क्योंकि कृष्ण है योग की निधि और बिना योग के उनके पास जाया नही जा सकता। जिस योग का अस्तित्व है आत्म चिंतन।

धन प्राप्ति हमारा परम उद्देश्य नहीं है हमारे जीवन का परम लक्ष्य है आत्म चिंतन के द्वारा परम सिद्धि प्राप्त करना। जो कि इसी जीवन में सम्भव है दूसरी योनी को ज्ञान शक्ति नहीं होती। धन तो केवल इसी भौतिक संसार में ही काम आता है। जब शरीर छोड़ कर जायेंगे तो धन हमारे सूक्ष्म शरीर की कुछ सहायता नहीं कर सकता।

यदि सांसारिक वस्तुओं का चिंतन करते रहेंगे तो जन्म मरण रूप संसार से छुटकारा नहीं हो सकता। मूर्ख ही अपने को इस संसार के अनुरूप बनाने का प्रयत्न करते हैं, परन्तु असली समस्या है इस भौतिक संसार से छुटकारा पाना यानी मुक्ति। जो लोग इसके अनुकूल बनने का प्रयत्न करते हैं वे जन्म मृत्यु के संसार सागर में फंसे रहते हैं। यदि आवागमन के चक्कर से बचना है तो आध्यात्मिक जीवन अपनाना होगा।

यह शरीर एक नौका है जो संसार रूपी सागर में तैर रही है और मन एक मल्लाह है। इसलिये सावधानी से मन रूपी खेवट के द्वारा संसार रूपी समुद्र से अपने शरीर रूपी नाव को पार लगाने का प्रयत्न करते रहना चाहिये।

महात्मा बुद्ध कहते है– कि यदि जीवन के पार कुछ नहीं तो तुम्हारा जीवन बेकार है। वे ये नहीं कहते तुम्हारा जीवन व्यर्थ है। वे यह कहते हैं कि मृत्यु के पार कुछ नहीं है तो जीवन व्यर्थ है। वे कहते है कि जीवन मृत्यु के पार कभी नहीं जाता। आप जिसे जीवन समझते हैं, वह मृत्यु का एक हिस्सा है। तुम इसके धोखे में पड़ जाते हो। तुम उसे जीवन समझते हो, और वह मृत्यु की ओर एक यात्रा मात्र है, एक कदम के सिवाय कुछ नहीं। तुम सोचते हो मैं जी रहा हूँ, लेकिन धीरे–धीरे मर रहे हो। इस जीवन का फल मृत्यु है। जो रास्ता मृत्यु की ओर जाता है तुम उसे जीवन कहते हो।

परम सिद्धि व कल्याण प्राप्त करना मनुष्य का धर्म है। पर यह शुभ कर्म करने से, सात्विक कर्म करने से भी प्राप्त नहीं होता। केवल अच्छे कर्म करने से स्वर्ग की प्राप्ति हो सकती है, धन मिल सकता है। पर परम कल्याण मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिए आध्यात्मिक चेतना को जागृत किये बगैर आध्यात्मिक जगत में प्रवेश नहीं कर सकते। आत्म चिंतन करने से ज्ञान प्राप्त होता है और ज्ञान प्राप्ति से राधा–कृष्ण धाम प्राप्त होता है।

धनेनाधर्मलब्धेन यच्छिद्रमपिधीयते।
असंवृतं तद् भवति ततोऽन्यदवदीर्यते।।

–महात्मा विदुर

अर्थात् अधर्म से प्राप्त हुए धन के द्वारा जो दोष छिपाया जाता है, वह तो छिपता नहीं, उससे भिन्न और नया दोष प्रकट हो जाता है।

सपनों में...

जगदीश राय बंसल (गोहाना)

शिवालय में गुरुदेव ने अनुष्ठान किया।
सपने में देखा यू कुऐ पर कौन खड़ा।।
एक विप्र तेजोमय पगड़ी धारी,
पानी पीने की आई मेरी बारी।
थमाया मेरे हाथ कमण्डल भारी,
लो बेटा पिलाओ अब तेरी बारी।।
अचानक सपना टूट पड़ा। सपने में ——
अब यों सोचण लागे गुरु दाता, ये ही होंगे मेरे भाग्य विधाता।
कहाँ पाऊं चरणों से जुड़ जाता, हे अनन्ता बताओ मुझे रास्ता
कि योगांकुर फूट पड़ा। सपने में——
एक मिले दुर्गा दास भण्डारी, श्री मुलख राज से भेंट कराई।
गुरु महिमा मुलाखराज सुनाई, मैंने प्रभू रूप से दृष्टी जमाई
स्वप्न खूब फला। सपने में——
अब भेद ऋषिकेश का चलेगा, गुरुदर्शन का अवसर मिलेगा।
दृढता से दीक्षा पाग्या जा बेटा वृन्दावन ही जागा।।
शक्ती संचार किया। सपने में——
थी गुरु जी में परा भक्ती मिल गई थी सारी शक्ती
अब देते हैं गुरु जी मुक्ती कर्मों की करते भुक्ती
योग भण्डार भरा। सपने में——
है गुरु जी की लीला निराली खाली गया ना कोई स्वाली
बिन मांगे माया लुटा दी है कदम कदम का रख वाली
'अधम' क्यों दूर खड़ा? सपने में——

गुंजान

डा. विजय सिंह

मध्यकालीन संतों में कुछ ही संत विद्या–अध्ययन समुचित रूप से ग्रहण किये हुये है। अधिकतर ''मसि–कागज छुयो नही '' के उक्ति को चरितार्थ करते है। एक बात समान है कि सभी संतों की अंतर क्रिया सिद्धयोग की रही है। कबीर, जीवा, निवृत्त नाथ, एक नाथ, नामदेव, सूरदास, मीरा सभी पर ईष्ट की एवं सदगुरु की कृपा दृष्टि के कारण ही अन्तर जगत में प्रकाश हुआ है।

अयोध्या के ऐसे ही एक संत बनादास है। जिन पर बाल्यकाल से ही सिद्ध शैव योगी लक्ष्मण बन से दीक्षा मिली हुई थी। जिसके फलस्वरूप शिवपूजा, रामचरित्रमानस पाठ और गीतोपदिष्ट योगाभ्यास करने लगे थे। फल स्वरूप श्रद्धा से मन–बुद्धि सतोमय रहता रहा। इन्होंने बाल्यकाल में ही पुनर्जन्म अब नहीं लेना है निश्चय किया–

बाढ़ी श्रद्धा हिए बालपन ते अतिभारी।
यहि तन नाघौं जक्त फिरौं नहि अब की पारी।।
बिघन बिपति जो परै सहौं सो सुति हरषाई।
यहि दृढ़ संकल्प जाहि ते फिर नहि आई।।

महात्मा बनादास पढ़े–लिखे नही थे। मात्र अक्षराभ्यास बचपन में कराया गया था। बारह वर्ष के पुत्र के निधन से शोकाकुल गृह त्याग कर अयोध्या में चौदह–वर्ष तक कठिन तपश्चर्या करते हुये भजन में अनवरत लगे रहे। जैसा पहले कहा गया है कि अन्तर गुंजन ही परा से पश्यन्त फिर पश्यन्त से मध्यमा में और मध्यमा से वैखर रूप संतों के साहित्य में प्रतिष्ठित होता रहा है। यही बानक इनके जीवन में भी घटित हुआ है वे कहते है–

विद्या विधि नाही लिखी, भूलि भालहुँ माँहि।
पढ़े ककहरा बालपन, मात्रा साबित नाहि।।
काव्य ग्रंथ नहि कर छुयौ, नहि विद्या अधिकार।
मति न ऊँची गति अवर नही, उर प्रेरक सरकार।।

श्री बनादास कृत गुरु–महात्म्य उच्च कोटि की अनभूति परक रचना है। अध्यात्म साधना में सद्गुरु का महत्व निर्विवाद है। इन्हे लौकिक गुरु के अतिरिक्त स्वप्न एवं भावलोक मे गुरुओं से कृपा मिली है।

भगवान आशुतोष शिव की कृपा से युगलमूर्ति सिया–राम ने इनकी निष्ठा परिपूर्णता को प्राप्त हुई।

जपौं नाम संकर मन लाई। दिन प्रति सरधा बढ़ सवाई।
सिव अस्तोत्र पढ़ौं मन लाई। संकर बरत करौं हरषाई।।
मुक्ति हेतु सेवौं सिव देवा, मन को कोऊ न पावत भेवा।
पंडित भाखे विधि जे सकामी, सो सपने उरमें नहिं जामी।।

शिव मंत्र का ग्यारह बार सवा लक्ष के हिसाब से अनवरत अवगाहन शिव श्रद्धा, स्वप्न दर्शन एवं वरदान आदि की घटना इनके जीवन में घटित हुई। ध्यानानुभव को वैखर बोध में वर्णित करते हुए अपने भाव निम्न छन्द में प्रकट किये हैं, देखें–

बंदौं शिवचरन ललित कमल अमक्त धूरी।
नखन जोति जगमगाति सोमा नहि कहि सिराति,
सुर नर मुनि भृंग मनहुँ मुक्ता छवि भूरि।
सरसर सहिं करत पान पायो जनु परम ज्ञान,
जोति रूप प्रगट कलषु स्याम भयो दूरि।
बरनत नहिं मति अघाति, कहत छबिहिं सकुच खाति,
मानहु बन अरून कोटि उडगन दुति रूरी।
संसै सर्प सरिस भरनि चारि फलहि देत बरनि,
बनादास धरत सकल जगत आस तूरी।।

वही सम्प्रज्ञात ज्योति में भगवान शिव के अमल अखण्ड ज्योति का वर्णन यह सिद्ध करता है कि जिसने भी गुरु मंत्र का ठीक–ठीक अवगाहन किया उसके अन्तर में वह स्पन्द, वह गूंज, वह नाद प्रकट हुआ। नाद से ज्योति ज्योति में भावाद्रेक के साथ सम्प्रज्ञात स्थितियों का क्रमशः प्रकटन, वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत एवं अस्मितानुगत चित्त निरोध के परिणाम रूप अनुभव में संतो को होता रहा है।

ज्यों–ज्यों यह गुंजन परा से बैखर तक विस्तार पाता है। संतो की वाणी वेद पुराण–सम्मत स्वयं होती है।

दिव्य अग्निकण प्रत्येक मानव शरीर में विद्यमान हैं, जो मनुष्य को मानवीय मूल्य का बोध कराते हैं तथा मनुष्य के आत्म यथार्थीकरण का मार्ग भी प्रशस्त करते हैं। मानव अपने सत्कर्मों एवं निष्ठापूर्ण प्रयासों से बस इनकी गति बढ़ा सकता है।

मेरे गुरुदेव "सिद्ध महात्मा की दृष्टि में"

प्रेषक:– केशव देव उपाध्याय

माँ विन्ध्यवासिनी का शक्तिपीठ मिरजापुर जनपद उत्तर प्रदेश के विन्ध्याचल में स्थित है। यह शक्तिपीठ अष्टभुजा क्षेत्र से भी जाना जाता है। इस अष्टभुजा धाम में एक परिक्रमा स्थली भी है, जिसे त्रिकोण के नाम से जाना जाता है। तप करने की नियत से आध्यात्मिक साधक इस त्रिकोण की परिक्रमा भी करते हैं। यह त्रिकोण शिवपुर नामक स्थान पर स्थित है। इस अष्टभुजा शक्तिपीठ धाम में उच्चकोटि के आध्यात्मिक साधक यदा–कदा आकर अपनी स्थिति को सर्वोच्च शिखर पर पहुँचाते हैं। वैसे बारहों मास कोई न कोई विशिष्ट साधक इस क्षेत्र में निवास करता ही है, परन्तु चतुर्मास में यहाँ कई विशिष्ट साधक अपनी साधना की स्थिति बढ़ाते हैं, तथा जन कल्याणार्थ कई परोपकार युक्त कार्य भी करते हैं।

बात सन् अस्सी के दशक की है। एक शक्ति सम्पन्न महात्मा आकर साधना रत थे एवं प्रातः 9 बजे से अपराह्न तीन बजे तक रोगियों का मुफ्त इलाज भी किया करते थे। प्रारम्भ में उनके यहाँ इलाज कराने वाले रोगियों की संख्या कम थी, परन्तु चतुर्मास समाप्त होते–होते उनके यहाँ इलाज के लिए आने वाले रोगियों की संख्या चार सौ से पाँच सौ के बीच पहुँच गयी। उनके यहाँ आश्चर्य की बात यह थी की हजारों दवा की पुड़ियाँ बना कर रखी रहती थी। किसी भी रोग का रोगी, अपना नम्बर आने पर, जब उनके सामने आता, वह उसकी नब्ज देखते एवं तीन पुड़ियाँ निकाल कर, उसके हाथों में देते हुए, रोगी से सिर्फ इतना कहते कि कल से प्रातः काल खाली पेट रोज एक पुड़ियाँ की दवा खाकर पानी पी लेना, तुम्हारा रोग ठीक हो जायेगा। उनकी वाणी अक्षरशः सत्य होती थी एवं उस रोगी को चौथे दिन से दवा की जरूरत नहीं पड़ती थी। आस–पास की जनता के लिये, उनका यह कार्य बड़ा ही कौतुहल एवं आश्चर्य का विषय था। अल्प समय में ही उन्हें काफी ख्याति प्राप्त हुई।

हमारे एक आदरणीय गुरुभाई के मन में, उनके इस कार्य को सुनकर जिज्ञासा बनी कि यह कैसा साधक है, जिसके पूरे संकल्प हो रहे हैं एवं कोई भी रोगी दुबारा दवा लेने नहीं जा रहा है। उन्होंने यह बात अपने एक मित्र श्री राधेश्याम जी से कही एवं फिर दोनों मिश्रित रूप से उनके पास, रोगी बनकर (बनावटी रोगी) उनके यहाँ पहुँच गये। उस दिन, जिस दिन ये दोनों आदमी उनके पास पहुँचे थे, उनके दवा देने वाले हॉल में करीब पौने तीन सौ मरीज (स्त्री–पुरुष) बैठे थे। प्रातः नौ बजे उन्होंने इलाज करना आरम्भ किया एवं प्रायः सभी रोगियों को तीन–तीन पुड़ियाँ देकर विदा करते गये। बीच–बीच में किसी–किसी रोगी को अलग बैठने का आदेश देकर यह कहते थे कि आप को तीन बजे के बाद दवा दी जायेगी। पौने तीन सौ रोगियों में मात्र अस्सी रोगियों को, तीन बजे के बाद, दवा देने का आश्वासन देकर, यह अलग

बैठाये थे। शेष मरीजों का ईलाज करके एवं दवा देकर वह तीन बजे तक विदा कर दिये थे।

ठीक तीन बजकर पाँच मिनट पर, वह अपने आसन से यह कहते हुए उठे कि आप सभी रोगी नहीं है। आप लोग हमारे साथ आइये। सभी अस्सी तथाकथित रोगियों एवं अपने पाँच अनुयायियों के साथ, वह वहीं पास में स्थित दूसरे हाल में गये जहाँ चार लाइनों में टाट-पट्टी बिछी थी। वह हाल काफी लम्बा चौड़ा था एवं पूरी लम्बाई में चार लाइनों में टाट बिछा था। एक टाट से दूसरे टाट के लाइन की दूरी चार फीट से कम नहीं थी। उन्होंने सभी उपस्थित अस्सी लोगों से कहा कि आप लोगों को इन टाट पट्टियों पर इस प्रकार बैठना है कि एक दूसरे के बीच की दूरी तीन फीट से कम न हो। सभी लोग उसी प्रकार बैठ गये। इसके बाद महात्मा जी अपने आसन पर पदमासन की हालत में बैठ गये। उसके बाद उन्होंने अपने बाये हाथ से अपनी बायी तरफ का तथा दाहिने हाथ से दाहिनी तरफ का कान, आँख, नाक और मुख हल्के दबाव से बन्द करके, सबको दिखलाया एवं आदेश दिया कि आप लोग यही क्रिया करके ''ॐ'' शब्द का उच्चारण करिये तथा नाद (शब्द) को दस मिनट तक सुनिये। दस मिनट समाप्त हो जाने के बाद उन्होंने अपने चार अनुयाइयों को आदेश दिया कि तुम लोग एक-एक रजिस्टर लेकर चारों लाइनों के साधकों का नाम, निवास स्थान एवं अनुभव नोट करो। इसके नोट हो जाने के बाद उन्होंने फिर कहा कि (अमुक मंत्र) का पन्द्रह मिनट तक श्वांस-प्रश्वांस जप करें एवं इसके बाद अपने आज्ञा चक्र पर ध्यान लगाने का प्रयत्न करें एवं आधे घन्टे तक का ध्यान क्लास करिये। आधे घन्टे के बाद उन्होंने फिर उन्हीं अपने चारों अनुयाइयों को आदेश दिया कि सभी साधकों के अनुभव विस्तार से नोट करो। सबके अनुभव नोट हो जाने के बाद, महात्मा ने कहा कि आप सभी लोग आज अपने निवास स्थान को जाइये एवं कल सायंकाल चार बजे फिर इसी स्थान पर आ जाइयेगा। इसके बाद उस महात्मा ने सभी साधकों को प्रसाद देकर विदा किया।

दूसरे दिन सायंकाल सभी अस्सी साधक उस महात्मा की तपस्थली पर उपस्थित हो गये। सबके उपस्थित हो जाने के बाद, उस महात्मा ने चारों रजिस्टरों पर लिखे अनुभवों को पढ़ा एवं पढ़ने के बाद, कहा कि सिर्फ दो साधक यहाँ रूके एवं बाकी लोग प्रसाद लेकर अपने-अपने निवास स्थान को जाये। उसने दो नाम पढ़े (दोनों हमारे गुरुभाई है) एवं कहा कि केवल यही यहाँ रहें।

जब सब लोग चले गये एवं मात्र हमारे दो गुरुभाई उस हाल में रह गये तो उस महात्मा ने अपने अनुयाइयों से कहा कि ये परात्पर सत्ता से दीक्षा प्राप्त हस्तियाँ है, इन्हें तुम सभी लोग साष्टांग प्रणाम करो। उनके उपस्थित सभी अनुयाइयों ने साष्टांग प्रणाम किया। उसके बाद उस महात्मा ने हाथ जोड़कर निवेदन किया कि अभी दो साल हमें इसी स्थान पर चतुर्मास करना है आप लोगों से निवेदन है कि अवश्य-अवश्य आने की कृपा करें। तदन्तर उस महात्मा ने प्रचुर मात्रा में मिष्ठान, फल, सूखाफल, ताल मिश्री का गठ्ठर बना कर अलग-अलग प्रसाद दिया।

हम अपने आराध्य देव योगेश्वर द्वय को भले ही अच्छी प्रकार न जानते हों, परन्तु किसी भी पथ का आध्यात्मिक पथिक, जिसका अन्तर्जगत में प्रवेश है, उन्होंने प्रतिपल परात्पर सत्ता

से परिपूर्ण आराध्यदेव को साष्टांग प्रणाम करना अपना सर्व प्रथम आध्यात्मिक कर्म माना है। ठीक ही लिखा है:-

"प्रभु जी तुम्हारी महिमा संसार गा रहा है।"

□□□

'आत्मा' का दर्शन कैसे करें !

शरीर सेवा तक सीमित हो जाने की भूल मनुष्य से प्रायः तब होती है, जब वह शरीर को ही सबकुछ समझ लेता है। मनुष्य शरीर नहीं आत्मा है। शरीर तो साधन मात्र है। साध्य केवल आत्मा ही है। आत्मा स्वामी है और शरीर सेवक। इस शरीर को ही आत्मा की सेवा में नियोजित करना चाहिये न कि आत्मा को शरीर के अधीन कर देना चाहिये। मानवीय अन्तःकरण का विकास सर्वोपरि है। दैवी शक्तियां एवं सामर्थ्य प्रत्येक मनुष्य में है, किन्तु लौकिक कामनाओं से घिरा हुआ मनुष्य पारलौकिक सम्भावनाओं का विचार तक नहीं करता। इसी कारण वह निकृष्ट है।

किन्तु मनुष्य जब धीरे-धीरे अपने दोष दुर्गुणों को हटाकर श्रेष्ठ संस्कारों को धारण करने लगता है तो उसके जीवन में, दृष्टिकोण में स्वभावतः परिवर्तन होने लगता है तथा भोग विलास की लालसा मिट जाती है और आत्म ज्ञान की इच्छा बलवान होती जाती है और वैसे ही साधन भी मिलते जाते हैं तथा जीवनक्रम सरलतापूर्वक लक्ष्य प्राप्ति की ओर अग्रसर होने लगता है।

यह साधन वाह्य नहीं होते वरन् आन्तरिक विशेषतायें ही होती हैं। सत्य, अहिंसा, प्रेम, त्याग, सेवा, आशा, उत्साह, धैर्य, स्वाध्याय, संयम, सदाचार आदि के द्वारा उसका परिष्कार होकर उसे शुद्ध निर्मल तथा पवित्र आत्मा के दर्शन होने लगते हैं। वही वास्तविक आत्म-ज्ञान है तथा इसी के लिए समस्त अध्यात्म उपचार-ध्यान-साधनायें इत्यादि बताई गयी हैं।

मन्त्रजप रूपी स्वाध्याय

डॉ. राजकुमारी त्रिखा
रीडर मैत्रेयी कालेज नई दिल्ली

किसी मन्त्र अथवा देवता के नाम को पुन: पुन: दोहराना ही मन्त्रजप है। आत्मदर्शन का पथ प्रशस्त करने वाली अनेक साधना पद्धतियों में ईश्वर के नाम का जप एक अत्यन्त सुगम व महत्वपूर्ण साधना प्रणाली है। कलियुग में मनुष्यों का शारीरिक बल, मानसिक एकाग्रता तथा भावशुद्धि का सतत ह्रास होने के कारण हठयोग, ज्ञानयोग इत्यादि का अभ्यास कठिन ही नहीं असम्भव प्राय: हो गया है। ईश्वर के नाम का जप ही सरल व सर्वजन सुलभ साधन है।

इष्टमन्त्र का जप एक प्रकार का यज्ञ है। अन्य यज्ञों में अनेक बाह्य उपकरणों की आवश्यकता होती है। परन्तु मन्त्र जप रूपी यज्ञ में किसी बाहरी उपकरण की आवश्यकता नहीं है। यही कारण है कि मनु ने जप यज्ञ को विधि यज्ञ से अधिक उत्कृष्ट मानते हुए कहा है–विधि यज्ञ से युक्त जो चार पाक यज्ञ (वैश्वदेव होम, बलिकर्म, तर्पण तथा अतिथि भोजन) है, वे जप यज्ञ के सोलहवें अंश के तुल्य भी (पुण्यदायक) नहीं हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में भी भगवान श्री कृष्ण घोषणा करते हैं– सभी यज्ञों में से जपयज्ञ हूँ।

इष्ट मन्त्र का जप योग साधना में अति महत्वपूर्ण माना गया है। जैसाकि पहले कहा जा चुका है, व्यासभाष्य में प्रणव जप को स्वाध्याय का दूसरा रूप ही माना गया है। यहां उपलक्षण द्वारा प्रणव जप से किसी भी इष्ट मन्त्र को ग्रहण करना चाहिए।

मन्त्रजप विधि– इस संदर्भ में मन्त्रजप विधि की चर्चा करना अप्रासंगिक न होगा। योगसाहित्य तथा महाभारत में मन्त्रजप विधि पर प्रचुर प्रकाश डाला गया है। प्रात: काल सूर्योदय के पूर्व मन्त्र जप करना चाहिए। कुशासन, मृगचर्म अथवा कम्बल पर बैठकर मन्त्रजप करना चाहिए। मन्त्रजप तीन प्रकार से करना चाहिए– (1) मानसिक अर्थात् मन ही मन जप करना (2) उपांशु अर्थात् ओठों को हिलाकर धीरे–धीरे बुदबुदाकर मन्त्रजप करना (3) वैखरी अर्थात् उच्च स्वर से बोलकर मन्त्र जप करना। इन तीनों में से मानसिक जप का फल सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। उपांशु जप का फल मानस जप से न्यून व वैखरी जप का फल न्यूनतम कहा गया है। परन्तु विधिविधान पूर्वक किये गये अग्निहोत्रादि यज्ञों की अपेक्षा वैखरी मन्त्र जप भी अधिक उत्कृष्ट फल प्रदान करता है।

मन्त्र जप करने से अपने मन को सब ओर से हटाकर एकाग्रता पूर्वक इष्टदेवता का ध्यान करना चाहिए। इससे चित्त शीघ्र ही एकाग्र हो जाता है। प्रणवजप के संदर्भ में व्यासभाष्य में कहा गया है– प्रणवजप करने वाले तथा प्रणव के अर्थस्वरूप ईश्वर की भावना करने वाले इस योगी का चित्त एकाग्र हो जाता है। इसका अभिप्राय है कि मंत्रजप द्वारा इष्ट ध्यान प्रारम्भ हो जाता है। प्रारंभ में केवल मंत्रजप होता है, परंतु अभ्यास बढ़ने पर कुछ काल पश्चात जप के

साथ–साथ इष्टदेवता का ध्यान प्रारम्भ हो जाता है। जैसे–जैसे ध्यानाभ्यास उत्कृष्ट हो जाता है, जप स्वयमेव विलीन हो जाता है। उस समय केवल ध्यान ही बचता है। एक उदाहरण से इस तथ्य को अधिक स्पष्ट किया जा सकता है। जिस प्रकार कोई लंगड़ा व्यक्ति अपने गन्तव्य तक जाने के लिए लाठी का सहारा लेकर चलता है, परन्तु वहाँ पहुँचकर अपनी लाठी एक ओर रखकर बैठ जाता है, उसी प्रकार मंत्र जप की सहायता से साधक ध्यान की अवस्था में पहुँच जाता है। ध्यान के प्रवाह में वह जप के प्रति सजग नहीं रहता। यह जपरहित ध्यान की स्थिति अत्युच्च अवस्था है।

मंत्रजप करते समय मंत्र का शुद्ध उच्चारण करना अत्यावश्यक है। मंत्र का अर्थ समझकर जप करना चाहिए। महाभारत में मंत्रार्थ के ज्ञानपूर्वक जप को महत्व दिया गया है। वहाँ एक मंत्रजापक कौशिक ब्राह्मण की कथा है, जिसने अर्थ ज्ञानपूर्वक गायत्री मंत्र का जप किया व उत्तम सिद्धि प्राप्त की।

एक अन्य प्रकरण में यहाँ तक कहा गया है, कि मंत्रार्थ जाने बिना जप करने से बुद्धि मारी जाती है। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि मंत्र का अर्थ जानने से उस अर्थ का चिन्तन करने में सहायता मिलती है तथा इस दृष्टि से मंत्र का अर्थ जानना आवश्यक है। परन्तु मन्त्रार्थ जाने बिना मंत्रजप से बुद्धिनाश होती है, यह बात तर्कसंगत नहीं लगती। सम्भव है कि सकामभाव से मंत्रजप करने पर यह बात सार्थक होती हो, परन्तु आत्मदर्शन के साधनमार्ग के पथिकों को इससे कोई हानि होती प्रतीत नहीं होती। शास्त्रों में प्रमाण मिलते हैं कि अर्थ जाने बिना किसी भी तरह से मंत्रजप करने से जपकर्ता को लाभ हुआ है। महर्षि वाल्मीकि ने तो राम का जप करने के स्थान पर गलती से मरा मरा शब्दों का ही जप किया। फिर भी उन्हें उसका उत्कृष्ट फल प्राप्त हुआ। तुलसीदास जी कहते हैं–

उल्टा नाम जपत जग जाना। वाल्मीकि भये ब्रह्म समाना।।

इस सम्पूर्ण विवेचन का निष्कर्ष है कि मंत्रजप, श्रद्धा, विश्वास तथा भक्तिपूर्वक करने पर अवश्य ही अभीष्ट फल प्राप्त होता है। टेपरिकार्डर की भांति यंत्रवत् तथा बहिर्मुखी चिन्तन के साथ मंत्रजप करना व्यर्थ है। जापक का मन इष्ट देवता की ओर एकाग्र होना चाहिए। श्रद्धा, भक्ति व इष्टदेवता को ध्यान से रहित मंत्रजप अभीष्ट फल प्रदान नहीं करता।

साधक को आरम्भ में मंत्रजप करते समय माला का प्रयोग करना चाहिए। बाद में मानसिक जप करते समय माला की आवश्यकता नहीं रहती। अनुष्ठान करते समय माला से मन्त्र संख्या गिनी जाती है। अतः अनुष्ठान में माला आवश्यक है।

महाभारत में मंत्रजापकों के लिए पालनीय नियमों का विवरण पाया जाता है। भीष्म पितामह महाराज युधिष्ठिर को कहते हैं– मंत्रजापक को कुशासन पर बैठना चाहिए। अपने हाथ में भी कुशा रखनी चाहिए। शिखा में भी कुशा बांधनी चाहिए। वह कुशों से घिर कर बैठे और मध्यभाग में भी कुशों से आच्छादित रहे। जापक विषयों को दूर से ही नमस्कार कर दे, मन में भी उनका चिंतन न करे। मन से समता की भावना करके मन का मन में ही विलय करें। फिर बुद्धि के द्वारा परब्रह्म परमात्मा का ध्यान करे तथा सर्वहितकारिणी वेदसंहिता, प्रणव व

गायत्रीमंत्र का जप करें। समाधिस्थ होने पर उस संहिता अथवा गायत्री आदि मंत्रों का जप भी त्याग दे। संहिताजप से प्राप्त हुए बल का आश्रय लेकर साधक अपने ध्यान को सिद्ध कर लेता है। वह शुद्ध चित्त होकर तप के द्वारा मन व इन्द्रियों को जीत लेता है। राग-द्वेष, शोक तथा मोह से रहित होकर गर्मी तथा सर्दी आदि समस्त द्वन्द्वों से रहित हो जाता है।

इस प्रकार विधिपूर्वक मंत्रजप करने वाला रागद्वेष रहित होकर उत्तमगति प्राप्त करता है। परंतु इन सभी नियमों का पालन न किया जाए तो पुनर्जन्म के चक्र में फंसता है। इसी प्रसंग में भीष्मपितामह कहते हैं- जो जापक पूर्ववर्णित नियमों का ठीक तरह से पालन नहीं करता, वह नरक में पड़ता है। जो अवहेलनापूर्वक जप करता है, जप के प्रति प्रेम या प्रसन्नता का भाव नहीं रखता अथवा जप के कारण मन में अहंकार करता है वह नरक में जाता है। जो मोहवश फल की इच्छा से जप करता है, वह जिस फल का चिन्तन करता है, उसी फल के अनुरूप नरक में पड़ता है। यदि जापक को अणिमा आदि योग सिद्धियाँ प्राप्त हो जाये और वह उनमें अनुराग करने लगे, तो उसके लिए वह नरक है, जिससे छुटकारा नहीं मिलता। जो जापक मोह से वशीभूत होकर विषयासक्ति पूर्वक जप करता है, वह अपने इच्छित फल के अनुरूप शरीर प्राप्त करता है। इस प्रकार उसका पतन हो जाता है। जिसकी बुद्धि भोगों में आसक्ति के कारण दूषित है तथा जो अविवेकशील है, वह जापक यदि चंचल मन से जप करता है, वो विनाशशील गति को प्राप्त करता है अथवा नरक में गिरता है (विनाशशील स्वर्गादि लोकों में जाता है, वहाँ से पुण्य क्षीण होने पर तिर्यक योनियों में जाता है)। मैं निश्चय ही जप का अनुष्ठान करूंगा, ऐसा आग्रह रखकर जो जापक जप में प्रवृत्त होता है, परंतु न तो उसमें भली प्रकार संलग्न होता है, और न ही उसे पूरा कर पाता है, वह नरक में पड़ता है। कामादि से बुद्धि दूषित होने के कारण ही उसके लिए नरक प्राप्ति अर्थात् नाना योनियों में जन्म ग्रहण करने की बात कही गयी है। जापक होना बहुत ही उत्तम है। उपर्युक्त राग द्वेष आदि दोष तो उसमें दूषित बुद्धि के कारण ही आते हैं। इस प्रकार विधिपूर्वक शुद्ध मन से मंत्रजाप करके साधक उत्तम फल प्राप्त करता है।

❑❑❑

संसार में गुरु से बड़ा कोई आपका हितैषी नहीं है। मेरा तो मानना है कि गुरु का नाम लेने मात्र से असंख्य पाप कट जाते हैं। उन्हीं की कृपा से भगवत् दर्शन संभव है और उन्हीं के आशीर्वाद से जीव ब्रह्मरूप हो जाता है।

– महात्मा चरणदास

क्रिया योग का द्वितीय अंग : स्वाध्याय

रामेश्वर खण्डेलवाल

गंगापुर सिटी

स्वाध्याय शब्द का प्रथम अर्थ, सु–अध्ययन। सु–यानि सुष्ठ, अच्छा जो सुखद हो, श्रेष्ठ हो, जिसके पढ़ने पर ज्ञान की प्राप्ति होती हो, अध्यात्मिक लाभ मिले, सुख मिले, शान्ति मिले।

''सु–अध्ययन'' अच्छे साहित्य, उत्तम पुस्तकें, गीता, रामायण पुराणादि का अध्ययन करना जिससे आत्मिक ज्ञान मिले। आध्यात्मिक जगत में उन्नति के शिखर पर ले जाये। आत्मा–परमात्मा के बारे में जानकारी मिले। जो मैं पढ़ रहा हूँ, अच्छा है, सुखद है इस ग्रन्थ को पढ़ने से मेरा जीवन सुन्दर, उत्तम, सुख शान्तिमय बन सकता है। ऐसे ग्रन्थों का अध्ययन स्वाध्याय कहलाता है। जिनसे हमें अच्छे गुण प्राप्त हो, जो हमारे लौकिक व आध्यात्मिक जगत के लिये लाभकारी हों, धर्म मार्ग पर चलने को प्रेरित करें, अच्छे बुरे का ज्ञान करायें, ऐसे सद्ग्रन्थों को पढ़ना चाहिए, उनका मनन करना चाहिए, उनको जीवन में उतारना चाहिए। जिससे हमारा मनुष्य जीवन सुखद हो और मृत्यु के बाद भी हमें उच्च लोकों की प्राप्ति हो, अच्छी योनि मिले – ऐसे ग्रन्थों का हमें अध्ययन करना चाहिए।

जिन ग्रन्थों को पढ़ने से, उनका ज्ञान लेकर उन पर अमल करने से हम अपना कल्याण कर सकते है। भगवत्गीता आदि ग्रन्थों को पढ़ कर कर्म योग, भक्ति योग, ज्ञान योग का ज्ञान हमारे अन्दर भर सकते है तथा किसी एक योग को अपने जीवन में उतार कर हम हमारा उद्धार कर सकते हैं। लौकिक जीवन में भी जीने की कला हम सद्ग्रन्थों से सीख सकते है। परिवार में रहने की कला आपसी सम्बन्धों को माधुर्य बनाने की कला, प्रेम, सद्भावना, मधुर व्यवहार आदि ज्ञान भी हमें सद्ग्रन्थों से मिल सकते है। रामचरित मानस (रामायण) पढ़कर हम ये ज्ञान प्राप्त कर सकते है। पिता के प्रति पुत्र का व्यवहार, सास के प्रति बहु का कर्तव्य, भाई–भाई के सम्बन्धों में मधुरता का ज्ञान। बड़ों के प्रति आदर सम्मान, छोटों के प्रति प्रेम त्याग आदि की भावना, मित्र के प्रति मित्र का क्या कर्तव्य होता है ये सब लौकिक ज्ञान जिससे हम हमारे जीवन में सुख शान्ति व घर में स्वर्ग जैसा वातावरण बना सकते है। जिससे हमारा ये लोक भी सुखी और परलोक भी सुखी बन सके।

स्वाध्याय का दूसरा अर्थ है–स्व–अध्ययन। स्वयं का खुद का अध्ययन कुछ अटपटा लगा कि खुद का अध्ययन क्या करना। हम तो जो है वो है। लेकिन ये हमारी भूल है। हमको स्वयं को हमारे बारे में पूरा ज्ञान नहीं है। हमने खुद अपने को नहीं जाना, तो दूसरों को क्या जानेंगे? हम अपने आप को शरीर मानते है, जो हमारे इस जन्म के माता–पिता ने जो नाम दिया वो ही हम हैं। ऐसा मानते जहां हम रहते है वो 'मेरा घर' है। यहीं मेरा गांव है, देश है। ये जो कुछ

नजर आ रहा है वो सब सत्य है। हम अभी अज्ञानता की छाया में जी रहे है। अपने आप को भूल रहे है। 'मैं शरीर नहीं हूँ', 'शरीर मेरा नही है' तो ये घर–परिवार रिश्तेनाते ये जो भी नजर आ रहा है वो मेरे कैसे हुए? इसके बारे में सोचना है, खुद को जानना है। 'मै कौन हूँ' कहाँ से आया हूँ, क्यों आया हूँ, क्या करना है? इन सब को जानने की जरूरत है। अगर हमने इनको जान लिया तो समझो हमने ब्रह्माण्ड की जानकारी कर ली। आत्मा–परमात्मा का नाम केवल सुनते आ रहे, पढ़ते आ रहे है लेकिन अभी तक ये समझ नहीं आया कि यह किस वस्तु का नाम है, ये कौन है?

ये जो मेरे सगे सम्बन्धी है इनसे मेरा क्या सम्बन्ध है? अब तक हमारे हजारों मां–बाप हो गये, हजारों भाई–बहन हो गये व आगे भी ये चक्र चलता रहेगा। क्यों? क्योंकि हमने स्वयं अपने आप को नही पहचाना इसलिये हम इस जन्म–मरण रूपी चक्र से नहीं बच सकते बार–बार जन्मना, बार–बार मरना, नये–नये सगे सम्बन्धी बनना, इन सबसे कैसे छूटा जाये इस पर विचार करना जिससे हमारा कल्याण हो। इन सब के बारे में अध्ययन करना भी स्वाध्याय कहलाता है।

आत्मा का स्वरूप क्या है? इस शरीर में कैसे आया, किस तरह योनि बदलता रहता है इसके पीछे कौन सा कारण है? हमारा वास्तविक रूप क्या है? आत्मा–परमात्मा का भेद – ये सब ज्ञान हमको कोई सद्पुरुष, सदगुरुदेव ही दे सकते है। वो ही हमको हमारा असली स्वरूप की जानकारी करा सकते है। कैसे कर्म करने है जिससे हमको अच्छी योनि मिले और धीरे–धीरे हम इस जन्म मरण से छुटकारा पा सकें। मैं और मेरा का भेद मिटा दे ऐसे सद्गुरु की शरण मे जाने पर ही हम को हमारा वास्तविक स्वरुप दिखा सकते हैं।

स्वाध्याय का तीसरा अर्थ है – मंत्रजाप द्वारा, ध्यान द्वारा की गयी भगवत उपासना। हम जो मंत्र जाप करते है, ध्यान करते है वह भी स्वाध्याय ही होता है। गुरुदेव द्वारा दिये गये मंत्र को उनके द्वारा बताये नियम के अनुसार जप करना, ध्यान करना अपना कल्याण करने का सही मार्ग होता है। क्रिया योग के तीनों अंग मानव का कल्याण करने के लिए ही बनाये गये है। इसमें एक अंग है स्वाध्याय। इस को अपने जीवन मे अपनायें और अपना उद्धार करें। मंत्र जाप भी हमारे जीवन को बदल सकता है। हमारा जन्म लेना सार्थक हो सकता है। क्योंकि ये मनुष्य योनि ही एक ऐसी योनि है जिसमें हम हमारा उद्धार कर सकते है। जन्म–मरण के चक्र से छूट सकते हैं। बाकी सब योनि भोग योनि है।

इस संसार सागर से अपनी जीवन रूपी नैया को पार करने के लिये किसी अच्छे नाविक की जरूरत है। जो हमको सद्गुरु के रूप में मिलते है और हमें इस भव सागर से पार करने में हमारे सहायक होते हैं। जन्म–मरण से छुटकारा पाने के लिये हमें सद्गुरु शरण में जाना ही पड़ेगा। जन्म–जन्म से बिछुड़े आत्मा को परमात्मा से मिला देने में गुरुदेव की जरूरत पड़ती है।

सद्गुरुदेव द्वारा दिया सिद्ध मंत्र, बीज मंत्र देवता का शरीर होता है। शिष्य अपनी श्रद्धा भक्ति से मंत्र जाप के द्वारा अपनी साधना से, स्वाध्याय से उस देवता का दर्शन कर सकता है।

जिस देवता का मंत्र है वह देवता साधक को दर्शन दे सकता है। वो आपकी लौकिक, अध्यात्मिक सारी कामनाएं पूरी होने लगती हैं। जो साधक गुरुमंत्र और देवता के मन व प्राणों की एकता कर लेता है उसे शीघ्र ही समाधि का लाभ मिलने लगता है। चैतन्य मंत्र के जाप से कुण्डलनी शक्ति जाग्रत हो जाती है। देवता मंत्र और गुरुदेव ये तीनो एक ही रूप है। इनकी उपासना का एक ही फल मिलता है।

अतः मंत्र जाप स्वाध्याय का एक साधन है जिससे हम समाधि लाभ के भागीदार हो सकते है। मंत्र जाप द्वारा हम अपने जीवन को बदल सकते है। घर–गृहस्थ का कार्य करते हुए भी हम ये साधना कर सकते है। इसके लिये हमें घर छोड़ कर बाहर जाने की भी जरूरत नहीं। जरूरत केवल इसकी कि हम अपनी साधना मे पूर्ण तरह समर्पण हो जाये। मंत्र जप की शक्ति से हमारे लौकिक कार्य श्रीगुरुदेव की कृपा से स्वतः ही फलदायी होते रहेंगे। हमारी सारी कामनायें पूरी होती रहेंगी।

गुरु वन्दना

कन्हैया लाल शास्त्री (मुकुल)
ललितपुर (उ.प्र.)

अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरुवे नमः॥

चरण कमल गुरुदेव के, वन्दौ बरम्बार।
जिनकी करुणा कोर से, होंत मुकुर भवपार॥ 1॥
मिले 'मुकुल' सुख सम्पदा, रहे नहीं तन–ताप।
प्रखरे ज्ञान–प्रकाश है, होत नष्ट सब पाप॥ 2॥
'मुकुल' मनोरथ पूर्ण हो, बनिबे बिगडे काज।
कर पावें अरि अहित नहीं, रह जाती है लाज॥ 3॥
एक रूप तुम बहुरूप तुम, श्री गुरुदेव दयाल।
ब्रह्मरूप दरसाइए, हम हो जाये निहाल॥ 4॥
दास 'मुकुल' पर कीजिए, अपनी करुणा कोर।
हो जावे कल्याण मम, अन्तिम जीवन छोर॥ 5॥
शक्तिभक्ति कुछ है नहीं, विद्या–बुद्धि–विहीन।
सद्‌गुरु रखिए लाज मम, सेवक हूँ आधीन॥ 6॥

मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे

– श्रीरामनाथजी 'सुमन' –

संसार को दो प्रकार से देखा जाता है – मित्र–दृष्टि से और द्वेष–दृष्टि से।

ऋषि कहते हैं–

मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे। (शुक्लयजुर्वेद)

अर्थात् 'हम लोग मित्र की दृष्टि से संसार को देखें।' यह उपदेश की वाणी नहीं है, यह युगों के अनुभव की वाणी है। जितना ही तुम दूसरों से प्रेम करोगे, दूसरों से जुड़ते जाओगे, उतने ही सुखी होगे, और जितना ही दूसरों को द्वेष–दृष्टि से देखोगे, उनसे कटते जाओगे, उतने ही दु:खी होओगे। यह जुड़ना ही प्रेम है, यह जुड़ना ही आनन्द है। यहाँ पराया कोई नहीं, जो हैं अपने हैं। मित्रताभरी आँखों से देखकर तुम मित्रों की संख्या बढ़ाओगे– उनकी ओर हाथ बढ़ाओगे तो वे अपने हो जायँगे और न भी हुए तो उनके परायेपन की धार कुंद पड़ जायेगी।

ईसाइयों में एक सम्प्रदाय है– वेज्लियन मेथाडिस्ट सम्प्रदाय। इसके संस्थापक जॉन वेस्ली ने लिखा है– 'छटाँक भर प्रेम सेर भर ज्ञान से कहीं अच्छा है।' प्रेम ज्ञान से अच्छा तो है ही, एक अर्थ में वह स्वयं ज्ञान है तथा सच्चे ज्ञान का उद्‌गमस्थल है। संत ग्रेगोरी ने कहा है–'समस्त ज्ञान की उत्पत्ति प्रेम से होती है।' गेटे ने भी कहा है– 'परिश्रम से जो काम सारी उम्र में कठिनाई से होता है, वह प्रेम के द्वारा एक क्षण में हो जाता है।'

मित्रता की आँख–अर्थात् प्रेम की आँख और अमित्रता की आँख अर्थात् द्वेष की आँख– इन दोनों में पहले से धरती स्वर्ग बनती है और दूसरे से दुर्व्यवहार, दुर्वचन, अहंकार बनता है, जिससे नरक का जन्म होता है।

महाभारत के आदि पर्व में एक छोटी–सी कथा है। पञ्चाल देश के राजा यज्ञसेन का पुत्र द्रुपद पढ़ने के लिये भरद्वाज के आश्रम में गया। वहाँ वह बहुत दिनों तक रहा और उसने अनेक प्रकार की विद्याएँ सीखीं। आश्रम में रहते हुए मुनिपुत्र द्रोण से उसकी खूब मित्रता और घनिष्ठता हो गयी। आश्रम से विदा होते समय द्रुपद ने द्रोण से कहा– 'यदि तुम कभी हमारे देश में आओगे तो हम तुम्हारा हर तरह से सम्मान करेंगे और तुम्हें अपना कुलगुरु बनायेंगे।' कुछ समय बाद यज्ञसेन की मृत्यु हो गयी तथा द्रुपद राजा हुआ।

उधर उसके सहपाठी द्रोण का भी समय पर गौतम–पुत्री कृपी के साथ विवाह हो गया। इस विवाह से अश्वत्थामा का जन्म हुआ। इन दिनों द्रोण बड़ी तंग स्थिति में थे, उनकी आर्थिक अवस्था शोचनीय थी– यहाँ तक कि वे अपने पुत्र को दूध भी नहीं दे सकते थे। बालक

अश्वत्थामा अपने साथियों को दूध पीता देखकर स्वयं भी दूध के लिये हठ करता था, किंतु द्रोण अपनी निर्धनता के कारण अपने प्यारे पुत्र की इच्छा –पूर्ति करने में असमर्थ थे। बालक को बहलाने के लिये उसकी माँ कृपी पानी में घोले हुए आटे को दूध कहकर उसे पिला देती थी। वह अपने साथियों से जाकर कहता– 'मैं भी दूध पीकर आता हूँ, किंतु साथी बालक उसका उपहास करते हुए कहते– 'तुमको दूध कहाँ मिलेगा? पानी में घुले आटे को तुम दूध कहते हो?' इस अपमान से क्षुब्ध होकर अश्वत्थामा एक दिन अपने पिता के पास गया और रोते हुए ये सब बातें उसने सुनायीं। सुनकर पिता का हृदय उमड़ आया, 'अब मुझसे नहीं सहा जाता, अब तो मुझे कोई उपाय करना ही होगा।'

सोचते–सोचते द्रोण को अपने बाल–सखा द्रुपद द्वारा दिये हुए आश्वासन की याद आयी। वे पञ्चाल देश की ओर चल पड़े। वहाँ पहुँचने पर जब वे राजा द्रुपद के सामने लाये गये, तब उन्होंने अनजान बनकर इनका परिचय पूछा। जब इन्होंने पुरानी बातों की याद दिलाकर कहा कि 'आश्रम में तुम हमारे घनिष्ठ मित्र थे और तुमने मुझसे कुछ प्रतिज्ञा भी की थी,' तब द्रुपद ने कहा– 'राजा और याचक की कैसी मित्रता? मैंने तुमसे कोई प्रतिज्ञा नहीं की।' सुनते ही द्रोण उलटे पाँव वहाँ से लौट आये तथा उनसे इस अपमान का बदला लेने के लिये ही उन्होंने कौरव–पाण्डवों को धनुर्वेद की शिक्षा देना आरम्भ किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि अर्जुन ने मुश्कें बाँधकर द्रुपद को द्रोण के सामने उपस्थित किया।

प्रतिहिंसा की जो लहर उठी, वह शान्त नहीं हुई; द्रुपद के इस अपमान का बदला उनके बेटे धृष्टद्युम्नने द्रोण का सिर काटकर लिया और फिर द्रोणपुत्र अश्वत्थामाने धृष्टद्युम्न को मारकर पितृ–ऋण चुकाया। सम्पूर्ण महाभारत इसी दुष्ट दृष्टि का परिणाम था।

ठीक इसके विपरीत उदाहरण कृष्ण–सुदामा का है। दोनों के बीच ठीक वही सम्बन्ध था, जो द्रुपद और द्रोण के बीच था; किंतु जब सुदामा निर्धनता की मार से विकल हो श्रीकृष्ण के पास पहुँचे, तब श्रीकृष्ण ने देखते ही दौड़कर उन्हें छाती से लगा लिया। कवि तो कहता है कि अपनी अश्रुधारा से ही उन्होंने अपने बाल–सखा के पाँव धोये, वे बराबर नम्रता एवं स्नेह ही उड़ेलते रहे तथा जो कुछ भी कर सकते थे, बिना मित्र के कहे ही उन्होंने कर दिया।

इन दोनों दृष्टान्तों में प्रकारान्तर से उसी मित्र–दृष्टि और द्वेष–दृष्टि के परिणामों का निदर्शन है। मानव मानव होता ही तब है, जब वह प्रेम को–मैत्री की दृष्टि को ग्रहण करता है। प्रेम ही जीवन का उत्साह है, प्रेम ही उसका पथ है, प्रेम ही उसका गन्तव्य है।

जब ईसा ने कहा था–' अपने शत्रुओं से प्रेम करो ', तब संसार उनकी बात पर हँस पड़ा था। जब बुद्ध ने कहा– '**अक्कोधेन जयेत् कोधम्**', तब आस्थाहीन लोगों ने उनका उपहास किया। जब गाँधी जी ने कहा– 'विरोधी के प्रति भी अहिंसक व्यवहार करो', तब लोगों ने सूखी हँसी हँस दी। आज भी प्रेम की, क्षमा की, अहिंसा की, जीव–मैत्री की बातें करने पर लोग सिर हिला देते हैं, कहते हैं–ये सब हवाई बातें हैं। परंतु प्रेम क्या सचमुच हवाई है? यह ठीक है कि मनुष्य में पशुता का अंश भी दिखाई पड़ता है, परंतु वह आरोपमात्र है। मनुष्य में प्रेम का अंश

उससे कहीं अधिक है और यह बात इससे कहीं अधिक सत्य है कि प्रेम किये बिना मनुष्य जी नहीं सकता। जबतक वह प्रेम न करेगा, स्वरूप के दर्शन न कर सकेगा। आनन्द और रस से दूर जीवन के नरक में भटकता ही रहेगा।

तुम किसी को शत्रु–दृष्टि से देख सकते हो, तुम उससे बदला ले सकते हो, तुम उसे हानि पहुँचा सकते हो। परंतु ऐसा करके तुम आनन्द नहीं प्राप्त कर सकते, सुखी नहीं हो सकते, क्योंकि उसको हानि पहुँचाने के पहले तुम अपने को हानि पहुँचा चुकते हो; आत्मद्रोह कर चुकते हो। इसीलिये जब तुम ऊपर से क्षणभर के लिए उल्लसित हो उठते हो, तब भी अंदर से अत्यन्त संतप्त, व्याकुल, अतृप्त और प्यासे रह जाते हो। सुख तथा आनन्द के लिये प्यार के सिवा दूसरा रास्ता ही नहीं है। इसलिये जगत् में जितने महापुरुष हुए हैं, सब इसी प्रेम–मार्ग की ओर संकेत करते हैं। जिसे नीचे से ऊपर उठना है, जिसे जीवन की उच्च भूमिका पर पहुँचना है, जिसे सच्चे आनन्द और सुख की खोज है, उसके लिये दूसरा रास्ता नहीं है।

सुकरात से उसके किसी विरोधी ने एक बार कहा था–'यदि मैं तुमसे बदला न ले सकूँ तो मर जाऊँ।' सुकरात ने उत्तर दिया–'यदि मैं तुम्हें अपना मित्र न बना सकूँ तो मर जाऊँ।'

आज संसार नरक हो गया है। सारी विद्या–बुद्धि, प्रगति और वैज्ञानिक उपलब्धियों के होते हुए भी जीवन भाररूप हो गया है। ईर्ष्या–द्वेष तथा घृणा का अन्धकार फैलता ही जा रहा है। हमारा बहुत सा दुःख दूसरों के प्रति हमारे संशय और अविश्वास से पैदा हुआ है। जिसे हम आँखों की कोरों में जरा–सी मुस्कान की किरण फैलाकर अपना बना सकते हैं, जिसे हम अधर पर फूटे दो प्रेम–वचनों से जीत सकते हैं, उसे हम अपनी शंकालु दृष्टि, चढ़ी हुई भौंहों और व्यंग्य के कटु शब्दों से दूर हटाते जा रहे हैं। सहानुभूति के स्पर्श से पत्थर द्रवित हो जाता है, प्रेम की एक चितवन दुर्भावनाओं की काई को काटकर सदा के लिये बहा देती है, वह हृदय में सीधे प्रवेश कर वहाँ अपना घर बना लेती है। जब मन रस से भरा होता है, तभी हम आनन्द की भूमि में प्रवेश करते हैं, जब मानव स्नेह का दान करता है, तभी उसका जीवन सार्थक होता है। इसलिये जो आनन्द चाहता है, उसे अपने हृदय–कपाट खोल देने होंगे। क्या यह कठिन है? क्या यह असम्भव है? जरा भी नहीं, किंतु इसके लिये हमें दृष्टि बदलनी होगी। निश्चय कर लेना होगा कि आज से प्रतिदिन हम एक नया मित्र बनायेंगे, प्रतिदिन हृदय की कोई–न–कोई गाँठ खुलेगी और हृदय में पत्थर बनी वासना एवं कटुता की अहिल्याएँ मानवी बनती जायेंगी। कठिनाई यह नहीं कि प्रेम दुर्लभ है; अपितु वह तो संसार में सबसे अधिक सुलभ है, प्रत्येक प्राणी में उसे प्राप्त किया जा सकता है। किंतु कठिनाई यह है कि हम दिल का दरवाजा बंद किये बैठे रहते हैं और पाहुन कुंडी खटखटाकर लौटते जाते हैं।

जरा हृदय के कपाट खोल दीजिये और प्रतिदिन सुबह उठकर निश्चय कीजिये कि आज आप एक नया मित्र बनायेंगे। इसकी खोज में कहीं दूर जाना नहीं है। राह चलते हुए, अपने प्रतिदिन के सामान्य कामों को करते हुए आप उसे पा लेंगे। आप चाहे जितने व्यस्त हों, आगन्तुक के लिये स्नेहभरी मुस्कान तो आप बिखेर ही सकते हैं। चीजें खरीदने के लिये आने

वाले ग्राहक, यात्रा करती अरक्षित बहिन, रास्ता भूले यात्री, आफिस में आपके पास काम से आनेवाले आदमी, अध्ययन की गुत्थियों में उलझे हुए छात्र, दिनभर की हारी–थकी गृहिणियाँ और द्वार की ओर उत्सुकता की दृष्टि बिछाये बच्चे, कष्ट से तड़पते रोगी, भूख–प्यास से शिथिल मानव–न जाने कितने रूपों में तुम्हारे स्नेह तथा सहानुभूति के प्यासे भक्त बिखरे हुए हैं। केवल देखने का साहस करो और बंद दरवाजे खोल दो। प्राणवायु को अंदर आने दो– प्रेम की प्राणवायु, स्नेह और मित्रता की जादूभरी वायु; बस, तुम्हारा काया–कल्प हो जायेगा।

पग–पग पर प्रेम तुम्हें पुकार रहा है और तुम हो कि अपनी आँखें बंद किये, अपने कान बंद किये, पथपर चले जा रहे हो– निरानन्द थकावट से भरे, प्रभु को उलाहना देते, भाग्यको कोसते। जरा आँखें खोलो, पाहुन तुम्हारे द्वारपर खड़ा है; जरा कान खोलो, भगवद्विभूति तुम्हें पुकार रही है। अगणित मित्र तुम्हारा आवाहन कर रहे हैं। केवल देखने–देखने की बात है; आनन्द तुम्हारा है, प्रेम तुम्हारा है; स्वर्ग तुम्हारा है, प्रभु तुम्हारे हैं।

❑❑❑

धन से विरक्ति

एक बार एक धनी सज्जन श्री रामकृष्ण परमहंस के पास पहुँचे, उन्होंने परमहंस जी से धन लेने का विनम्र आग्रह किया और बोले –"महाराज ! इस धनराशि को आप स्वीकार करें, इसे परोपकार के कार्यों में लगा दें।"

परमहंस जी मुस्कराये – "भाई मैं तुम्हारा धन लूँगा तो मेरा चित्त उसमें लग जायेगा। इससे मेरी मानसिक शान्ति भंग होगी।" धनिक ने तर्क दिया –"महाराज, आप तो परमहंस हैं, आपका मन उस तेल बिन्दु के समान है जो कामिनी कंचन के महासमुद्र में स्थित होकर भी सदैव उससे अलग रहेगा।"

स्वामी जी गंभीर हो गये और बोले – "भाई, क्या तुम्हें ज्ञात नहीं कि अच्छे से अच्छा तेल भी यदि बहुत दिनों तक पानी के सम्पर्क में रहे तो वह अशुद्ध हो जाता है और उससे दुर्गन्ध आने लगती है।"

धनी को बोध हुआ। उन्होंने अपना आग्रह छोड़ दिया और धन का उपयोग स्वयं ही उपकार में कर दिया।

साधना का स्वरूप और उद्देश्य

पं. लीलापत शर्मा

साधना का अर्थ है – अपने आप को साधना। शरीरगत क्रियाशीलता, मनोगत विचारणा और अंतरात्मा की भाव संवेदना का स्तर किस प्रकार ऊँचा उठाया जा सकता है और किस प्रकार पशुता को देवत्व में परिणित किया जा सकता है, इसी विद्या का नाम साधना है।

पदार्थों के अनगढ़पन को दूर करके उन्हें सुव्यवस्थित बनाने का कार्य विज्ञान ने किया है। यदि ये प्रयास न किये गये होते तो मनुष्य आज भी बन्दरों जैसी जिन्दगी जी रहा होता और यह धरती सृष्टि के आरम्भिक दिनों में होती। मनुष्य को आहार–विहार, रहन–सहन एवं रीति–नीति की सभ्यता एवं संस्कृति ने सुव्यवस्थित बनाया है। शिक्षा, चिकित्सा, कला–शिल्प, उद्योग, विज्ञान, समाज, शासन की सुव्यवस्था ने मनुष्यों को सुव्यवस्थित रीति से रहने और सुनियोजित पद्धति से विकसित होने का अवसर प्रदान किया है। इन प्रयासों को भौतिक प्रगति की साधना कहा जा सकता है।

आत्मचेतना के स्वरूप, उद्देश्य और दिशाधारा के निर्धारण में आध्यात्म विज्ञान के तत्वदर्शन ने भारी योगदान दिया है। नर–कीट एवं नर–पशु के स्तर के अनगढ़ मन स्तर को, चिंतन की नैतिक एवं उपयोगी मर्यादाओं में बाँधने की आदर्शवादी उत्कृष्टता अपनाने के लिए उपयुक्त प्रशिक्षण ब्रह्मविद्या के अंतर्गत किया गया है। उसी आधार पर यह संभव हो सका कि सामान्य स्तर का मनुष्य तनधारी जीव अपनी प्रतिभा एवं प्रखरता को समुन्नत बनाते हुए महात्मा, देवात्मा एवं परमात्मा के स्तर पर पहुँचे। आत्म विज्ञान के अंतर्गत चेतना को समुन्नत बनाने वाले सभी प्रयास आते हैं। उन्हें आध्यात्म साधना कहते हैं। साधना के आधार पर मानवीय चेतना मात्र जीवन निर्वाह भर के क्रियाकलापों में उलझी न रहकर उस स्तर पर पहुँच सकती है, जहाँ से वह ब्रह्मसत्ता का प्रतीक प्रतिनिधि होने का दावा कर सके। उसी स्तर के अनुरूप अपने वर्चस्व का परिचय दे सके। संक्षेप में साधना इसी का नाम है।

उपयोगिता की दृष्टि से जितना महत्व भौतिक प्रगति एवं व्यवस्था का है, उससे अधिक महत्व आत्म चेतना के परिष्कार का है। पदार्थ का उपयोग तो चेतना ही करती है, यदि इस मूल सत्ता का स्वरूप अनगढ़ एवं विकृत बना रहा तो फिर पदार्थों का बाहुल्य होते हुए भी उनका सदुपयोग न हो सकेगा और दुरुपयोग से तो अमृत भी विष बनते देखा गया है। चेतना का स्तर ऊँचा हो तो आंतरिक उत्कृष्टता के कारण अभावग्रस्त परिस्थितियों एवं प्रतिकूलताओं के बीच रहते हुए भी हँसता–हँसाता, हल्का–फुल्का जीवन जिया जा सकता है। अतः विचारशीलों ने भौतिक प्रगति के लिए किये गये साधनों, प्रयासों की तुलना में आत्मिक प्रगति के लिए किये जाने वाले पुरुषार्थ को असंख्य गुना महत्वपूर्ण बताया है।

ईश्वर के अविनाशी होने के कारण जीव में अपने पिता की सभी विशेषतायें विद्यमान हैं।

परमाणु के घटकों में पूरे सौर मंडल स्तर की गतिविधियां काम कर रही है। बीज में समूचे वृक्ष का ढाँचा विद्यमान रहता है। अखिल ब्रह्माण्ड में संव्याप्त भौतिक शक्तियों एवं आत्मिक विभूतियों का जो भण्डार भरा पड़ा है, वह बीज रूप में मानवीय सत्ता के भीतर विद्यमान है। ब्रह्माण्ड का छोटा स्वरूप पिंड, मनुष्य कलेवर है। इसके गर्भ में ब्रह्म चेतना की सभी विशेषताओं एवं क्षमताओं को प्रसुप्ति से जागृति में बदला जा सकता है। सामान्य से असामान्य बन सकने की इस प्रक्रिया को आत्म साधना का एक अंग कहा जा सकता है।

आत्म साधना भारतीय विज्ञान की मौलिक विशेषता है। इसी आधार पर इस देश के 33 कोटि–कोटि नागरिक देव मानवों में गिने जाते थे और उनकी वह निवास स्थली भारत भूमि 'स्वर्गादपि गरीयसी' मानी जाती थी। श्रेष्ठ व्यक्तियों का जहां निवास होगा, वहां उत्कृष्ट परिस्थियां अनायास ही बनी रहेंगी। जिस देश के नागरिकों के दृष्टिकोण में उत्कृष्टता और व्यवहार में आदर्शवादिता कूट–कूट कर भरी हो, उसका वातावरण स्वर्ग जैसा और आचरण देवताओं जैसा होना चाहिए। युग की सबसे बड़ी मांग यह है कि भौतिक प्रगति पर आध्यात्मिकता का अंकुश स्थापित हो अन्यथा बढ़ा हुआ वैभव उदंडड तक्षक की तरह अपने दूध पिलाने वालों को ही डस लेगा। व्यक्ति और समाज का हित इसी में है कि भौतिक दरिद्रता की भांति ही आत्मिक क्षेत्र में घुसी संकीर्णता को मार भगाया जाए।

साधना वह प्रक्रिया है जिसमें अमुक विधि–विधानों तथा कर्मकांडों के साथ अमुक स्तर की भावनाओं का समावेश करके आंतरिक अवसादों को दूर किया जाता है। चेतना पर छाई प्रसुप्ति को जागृति में परिवर्तित करना आत्म साधना का उद्देश्य है। मनुष्य जन्म के अनुरूप आस्थाएं विकसित करने के लिए पिछड़ी प्रवृत्तियों को उखाड़ना आवश्यक होता है। परिष्कृत मनःस्थिति में रहने वाले सहज ही समुन्नत परिस्थिति प्राप्त कर लेते है, यह तथ्य सर्वविदित है। साधना द्वारा व्यक्तित्व का परिशोधन करते हुए सर्वतोमुखी प्रगति के पथ पर असंदिग्ध रूप से बढ़ा जा सकता है।

साधना शब्द का प्रयोग योगाभ्यास, तप, साधना, पूजा पाठ के अर्थ में होता है। इसे आत्म साधना कहना चाहिए। प्रसुप्त अंतः शक्तियों को जगाने, उच्च स्तरीय दृष्टिकोण विकसित करने एवं क्षमताओं को सुनियोजित करने के लिए ही तत्वदर्शी महामनीषियों ने अपने दीर्घकालीन अनुभवों के सहारे आत्म विज्ञान का आविर्भाव किया है। इस विद्या को संसार की सर्वोपरि विद्या कहा गया है।

भौतिक विज्ञान के सहारे पदार्थों को उपयोगी बनाया जाता है। आत्म विज्ञान के सहारे अंतःचेतना की प्रखरता उभरती है। इस आधार से भौतिक सफलताओं का पथ, द्वार खुलता है। सबसे बड़ी बात यह है कि परिष्कृत आत्मचेतना को इस विश्व ब्रह्मांड में संव्याप्त सृष्टि की सूत्र संचालक ब्रह्म सत्ता के साथ संपर्क को अधिकाधिक सघन बनाते चलने का अवसर मिलता है। यह साधना मनुष्य को सामान्य से असामान्य बनाती है। उसके पशु संस्कार घटते और दैवी तत्त्व बढ़ते चले जाते है। इस प्रगति की प्रतिक्रिया अनेक ऐसे सुखद परिणामों के रूप में सामने आती है, जिन्हें ईश्वरीय अनुग्रह एवं दैवी वरदान का नाम देने में किसी को कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

आत्मिक साधनाओं का फल चमत्कार समझा जाता है और उसे सिद्धि नाम दिया जाता है। वस्तुतः आत्म साधना के आधार पर आत्म चेतना की गहरी परतों को उभारने की, प्रसुप्त शक्तियों के जागरण की प्रक्रिया संपन्न होती है और उसके सहारे जो असाधारण स्तर के सत्परिणाम उत्पन्न होते हैं, उन्हें सिद्धि कहा जाता है।

साधना का प्रयोजन अपने अविवेक और अनाचार का निराकरण करना है। अपनी कामनाओं का परिशोधन एवं दृष्टिकोण भी साधना का उद्देश्य कहा जा सकता है। कर्तव्य में देवत्व का समावेश करना तथा चिंतन में घुसे कुविचारों के उन्मूलन में जुटा देना साधनात्मक क्रियाकलापों का प्रमुख संकेत है। साधना एक आध्यात्मिक व्यायाम प्रक्रिया है, जिसके आधार पर आत्मबल बढ़ाया जाता है और देव वर्ग की सत्प्रवृत्तियों का अभिवर्धन किया जाता है। इस आत्म परिष्कार के फलस्वरूप उन विभूतियों की चाबी हाथ लग जाती है जो परमेश्वर ने पहले से ही हमारे भीतर रत्न भंडार के रूप में सुरक्षित कर दी है।

साधना अंतःकरण में वह प्रकाश उत्पन्न करती है, जिससे अपने लक्ष्य और अपने कर्तव्य को समझा जा सके। साधना वह शक्ति प्रदान करती है, जिससे आत्मबल विकसित हो सके और सन्मार्ग पर चलने के लिए पैरों में अभीष्ट क्षमता रह सके। साधना वह साहस उत्पन्न करती है, जिसके आधार पर प्रलोभनों और आकर्षणों को दुत्कारते हुए कर्तव्य की चट्टान पर दृढ़तापूर्वक अगसर रहा जा सके और हर विघ्न बाधा, कष्ट–कठिनाई का धैर्य और संतुलन के साथ सामना किया जा सके। साधना का वरदान महानता है। साधना जितनी सच्ची और प्रखर होती है उतने ही हम महान बनते चले जाते हैं। तब हमें किसी से कुछ मांगना नहीं पड़ता, ईश्वर से भी नहीं। तब अपने पास देने के लिए बहुत होता है, इतना अधिक कि उसके आधार पर अपने को, संसार को और परमेश्वर को संतुष्ट किया जा सकता है।

आत्मबल की यह संपदा ही जीवन के हर पक्ष में आलोक उत्पन्न करती दिखाई पड़ती है। उसकी ज्योति शरीर को ओजस्वी, मस्तिष्क को तेजस्वी और अंतःकरण को वर्चस्वी बनाती है। अतः संकल्प शक्ति का बिखराव रोकने, उसे प्रचंड बनाने और अभीष्ट प्रयोजन में नियोजित किए रहने की अंतः क्षमता विकसित करने के लिए साधना को अतीव उपयोगी माना गया है। आध्यात्म साधना का तथ्यपूर्ण ढांचा अनुभवों के आधार पर प्रयोजन के लिए खड़ा किया जाता है। मानव समाज के उद्धार का केवल एक ही मार्ग है, केवल एक ही उपाय है, जिसकी वह आज तक उपेक्षा करता आया है, उस मार्ग का नाम है शक्ति साधना और आत्मोपलब्धि। इसी के द्वारा हमें चैतन्य देव का प्रेम व आनंद, परमहंस रामकृष्ण का संसार के सभी धर्मों का समन्वय तथा एकीकरण व सूक्ष्म मानवता की प्राप्ति होगी।

इन सब भावों को एकत्रित करके एक प्रबल स्रोत बनाना होगा। पतित पावनी, सकल मलहारिणी, पवित्र सलिला, भागीरथी गंगा की भांति इस नाशवान संसार में तथा अर्द्धमृत इस मानव जाति के बीच में इसे प्रवाहित कर देना होगा। निश्चय मानिए कि इस धरा पर एक बार पुनः स्वर्गीय वातावरण निर्मित होगा। यही साधना का उद्देश्य है। आत्मिक प्रगति की यही सनातन परंपरा है।

(विभूति भोंदर्श से साभार)

कृतज्ञ होना सीखें

डॉ. गोपाल नारायण आवटे

संसार में दुख का कारण है कि हम किसी के भी आभारी नहीं होते है। हम जिस दिन आभार से भर उठेंगे उस दिन जीवन में प्रसन्नता आ जायेगी। जीवन को हम ऐसे ढोते है मानों कोई वजन हो। ये सुन्दर संसार जिसे हम देखते हैं, इसके रंगो से सुख अनुभव करते हैं, अपने कानों से पक्षियों के कलरव को सुनते हैं, पांवों से हम ऊंची-ऊंची चढ़ाईयों को लांघ जाते हैं। इन हाथों से पूरे संसार को बदलने की शक्ति रखते हैं। अपने मस्तिष्क से संसार को सुखी बनाने की अनगिनत कल्पनाओं को साकार कर सकते है- फिर भी हमें अपना शरीर बेकार प्रतीत होता है। इतने उपयोगी शरीर के लिए हमने कभी ईश्वर का आभार नहीं माना। हमने उगते सूरज की सुन्दरता देखकर, डूबते सूर्य की लालिमा देखकर उस अद्‌भुत दृश्य के लिए ईश्वर का आभार प्रगट नहीं किया। हमारे द्वारा कृतज्ञ नहीं होने के चलते ही हमें अपना जीवन भारी प्रतीत होता है।

हमारे साथ किसी ने कभी भी सहयोग किया हो उस पर हमने अपना आभार प्रगट नहीं किया। हमें प्रतीत होता है कि आभार प्रगट करने से, धन्यवाद कहने से हम छोटे हो जायेंगे। आभार प्रगट करने से हम में ऊर्जा का संचार होता है और धन्यवाद पाने वाला सत्कार्य को और भी लगन से करने की प्रेरणा पाता है।

हमें आभारी अपने शत्रुओं का भी होना चाहिए जिनके कारण हम सतर्क होकर जीवन में चलते है। उसी के कारण हम गंदे-खराब कार्यों से दूर रहते है- कहीं ऐसा न हो हमारे खराब कार्य का वह लाभ ले ले। हमें सदैव अपने दुश्मन का भी आभारी होना चाहिए। उचित समय पर हमें उसका आभार भी ज्ञापित करना चाहिए। अपनी सफलता का समस्त श्रेय असफलताओं के अतिरिक्त अपने शत्रुओं को ही देना चाहिए।

जीवन में आप जितने विनम्र होंगे जीवन उतना ही आनंद से भरा प्रतीत होगा। जीवन में जितना आनंद भरा होगा हम उतने ही ईश्वर के प्रति आभार से भरे होंगे। आभार शब्दों से प्रगट किया जा सकता है, हावभाव से प्रगट किया जा सकता है, आभार आशीष के रूप में प्रगट होता है, आभार नेत्रों से अश्रु बनकर भी प्रवाहित होता है।

हमें सदैव इस बात का आभारी होना चाहिए कि किसी ने हमारा साथ कितनी देर तक निभाया। हमें उलाहना नहीं देना चाहिए कि वह हमें छोड़ कर बीच में चला गया। हमें प्रसन्न होना चाहिए कि वह इतने समय तक हमारे साथ रहा। पानी का गिलास कितना भरा हुआ है यह महत्वपूर्ण होना चाहिए, कितना खाली है यह देखना निराशा को जन्म देने वाला होगा। आभारी होने वाला व्यक्ति ईश्वर के सबसे पास होता है। आभारी होने वाला व्यक्ति आत्म विश्वासी एवं

आशा से भरा होता है। आभार प्रगट करने वाला व्यक्ति कभी नीचा नहीं देखता, क्योंकि उसे बुराई में भी भलाई दिखलाई देती है। कष्टों में ही ईश्वर द्वारा लाभ दिये जाने का संदेश दिखलाई देता है उसकी दृष्टि सदैव उपकार से भरी होती है। उसके लिये संसार अद्‌भुत रहस्यों से भरा होता है। उसके नेत्रों में जिज्ञासाएं सागर की लहरों की भांति अट्टाहस करती दिखलाई देती हैं। आभार प्रगट करने वाले व्यक्ति के पास सिर्फ अच्छाईयों को देने के अतिरिक्त कुछ भी शेष नहीं होता है।

जो आभार प्रगट करने में कृपण होते हैं उनको समाज में सम्मान नहीं मिलता। लोग उनसे मिलने से कतराते हैं। इसलिये अपने को समाज के प्रति उदार बनायें–प्रत्येक क्षण का आभार प्रगट करें– ईश्वर को धन्यवाद दें, जिन व्यक्तियों ने आपके साथ जितना भी समय बिताया उसके लिए कृतज्ञ होना सीखिए। तब ही आपका जीवन सुखी हो पायेगा। दूसरों को दुखी करके आप भला कैसे सुखी हो सकते हैं।

दूसरों के प्रति आभार प्रगट करके ही हम संतुष्ट और आनंद से भरे रह सकते हैं। शांत स्थल पर कुछ पल बैठ कर प्रभु की दया, उसके दिये साधनों पर चिन्तन करें– आपको प्रतीत होगा कि वह कितना दानी है फिर भी मौन है। कुछ नहीं कहता और एक हम हैं जो लेकर भी आभार प्रगट नहीं करते। एक बार जीवन में आभार को प्रवेश करने दें– देखिये जीवन में कैसा क्रान्तिकारी परिवर्तन आता है। वहीं से आपके जीवन का प्रारम्भ होगा।

❑❑❑

समय सारणी बनाइये

हर काम के लिए कोई समय होता है और हर समय के लिए कोई काम होता है। लोग शिकायत करते हैं कि उनके पास समय नहीं है, वे वास्तव में आलसी हैं। समय तो चोर की भाँति दबे पैर चुपके से निकल जाता है। अतः समय का नियोजन करना चाहिये। समय तालिका बनाइये। दृढ़ता, निष्ठा, संयम से समय तालिका का पालन कीजिये। निश्चित समय पर उचित कार्य करने से जीवन में सफलता मिलती है।

प्रकृति भी समय के सदुपयोग की गुरु है। प्रातःकाल का ब्रह्म मुहूर्त भ्रमण हेतु निमंत्रण देता है। गया वक्त फिर हाथ नहीं आता, उचित समय पर ''सही कार्य'' जीवन में आनन्द की गंगा का वास्तविक स्रोत है। जो बीत गया सो बीत गया, आगे की सुध लेहि। भूतकाल के बारे में सोच–सोच कर अपने वर्तमान को दूषित न करें।

॥ ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः ॥ ॥ ॐ ॥ ॥ ॐ श्री चन्द्रमोहन गुरुवे नमः ॥

अष्टम् श्री सिद्ध योग आध्यात्मिक साधना एवं निःशुल्क चिकित्सा शिविर

आत्मदर्शन, योगसाधना, निरोगता एवं सत्संग का अनूठा सम्मेलन

परम करुणा निकेतन योग योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज एवं श्री सद्गुरु देव योगिराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की कृपा से गत वर्षों की भांति इस वर्ष भी दिनांक 14 दिसम्बर 2007 दिन शुक्रवार से 16 दिसम्बर 2007, दिन रविवार तक तीन दिवसीय योग शिविर का आयोजन रामवाटिका, टरननगंज, कालपी में होने जा रहा है।

इस शिविर में श्री सद्गुरु देव जी के बहुत ही कृपा पात्र शिष्य आचार्य श्री चन्द्रप्रकाश शर्मा योग विशेषज्ञ सदस्य, स्वास्थ्य मंत्रालय भारत सरकार, योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा अनुसंधान परिषद नई दिल्ली एवं सिद्ध गुफा सवाई आश्रम के अन्य कृपा पात्र शिष्यों द्वारा साध्य एवं असाध्य रोगों का निःशुल्क उपचार तथा जीवन में हताश एवं निराश और आध्यात्मिक साधना की तलाश में जुटे भाई बहिनों को योगासन, प्राणायाम, षट्कर्म आयुर्वेद चिकित्सा द्वारा किया जायेगा।

आप लोग इस स्वर्णिम अवसर का लाभ अवश्य उठायें।

स्थान : रामवाटिका, पुखराज मार्केट, पोस्ट ऑफिस के आगे, टरननगंज, कालपी

कार्यक्रम

दिनांक 14, 15, 16 दिसम्बर 2007

प्रातः	5.00 बजे से 6.30 तक	सूक्ष्म आरती एवं ध्यान
	6.30 बजे से 8.00 तक	आसन एवं प्राणायाम
	8.00 बजे से 9.00 तक	आरती एवं गीता पाठ
	9.00 बजे से 9.30 तक	स्वल्पाहार
	9.30 बजे से 11.30 तक	प्रवचन
	11.00 बजे से 12.30 तक	व्यक्तिगत समस्याओं का निराकरण
	12.30 बजे से 3.00 तक	भोजन एवं विश्राम
सायं	3.00 बजे से 5.00 तक	भजन संकीर्तन
	5.00 बजे से 8.00 तक	योग सिद्धान्तों पर प्रवचन
रात्रि	8.00 बजे से 9.00 तक	आरती
	9.00 बजे से 10.00 तक	भोजन-विश्राम

आयोजक- श्री सिद्ध योग सत्संग मण्डल, कालपी (जालौन)

सम्पर्क सूत्र- 9839732143, 9935661795 (चन्द्रकिशोर दुबे), 9936583351 (वीरेन्द्र सिंह), 9415026488 (उमाशंकर पुरवार), 05164-276246 (विष्णु पुरवार), 9935[illegible] (जगदीश प्रसाद गुप्त), 9415064360 (उमाजी), 9415631759 (विनोद कुमार पुरवार)

रतन प्रिंट, मिनावरा, कालपी ☎ 9918275308

परमेश्वर का अंश ही है जीवात्मा

चराचरव्यपाश्रयस्तु स्यात्तद्व्यपदेशो भाक्तस्तद्भावभावित्वात्।

(वेदान्त दर्शन 2/3/16)

यह जीवात्मा वास्तव में सर्वथा शुद्ध परमेश्वर का अंश, जन्म मरण से रहित विज्ञानस्वरूप नित्य अविनाशी है, इसमें कोई शंका नहीं है। तो भी यह अनादि परम्परागत अपने कर्मों के अनुसार प्राप्त हुए स्थावर (वृक्ष–पहाड़ आदि), जंगम (देव, मनुष्य, पक्षी आदि) शरीरों के आश्रित है, उन–उन के साथ तद्रूप हो रहा है, ''मैं शरीर से सर्वथा भिन्न हूँ, इससे मेरा कोई संबंध नहीं है'', इस वास्तविक तत्व को नहीं जानता, इस कारण उन–उन शरीरों के जन्म–मरण आदि को लेकर गौणरूप से जीवात्मा का उत्पन्न होना श्रुति में कहा गया है। इसलिए कोई विरोध नहीं है। कल्प के आदि में इस जड़–चेतनात्मक अनादिसिद्ध जगत् का प्रकट हो जाना ही इस परमात्मा से इसका उत्पन्न होना है और कल्प के अन्त में उस परमेश्वर में विलीन हो जाना ही उसका लय है।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण स्पष्ट करते हैं –

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम्।।

अर्थात् हे अर्जुन ! कल्पों के अन्त में सब भूत मेरी प्रकृति को प्राप्त होते हैं, यानि प्रकृति में लीन होते हैं और कल्पों के आदि में उनको मैं फिर रचता हूँ।

इसके सिवा परमब्रह्म परमात्मा किन्हीं नये जीवों को उत्पन्न करते हों – ऐसी बात नहीं है। इस प्रकार स्थूल, सूक्ष्म और कारण – इन तीन प्रकार के शरीरों के आश्रित जीवात्मा का परमात्मा से उत्पन्न होना और उसमें विलीन होना श्रुति–स्मृतियों में जगह–जगह कहा गया है। जीवों को भगवान् उनके परम्परागत संचित कर्मों के अनुसार ही अच्छी–बुरी योनियों में उत्पन्न करते हैं।

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

उत्पाद (व्यापार) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना -

विभिन्न माध्यमों से विज्ञापन की सुविधा

1. डाक वस्तुओं पर मीडिया आवरण (स्टाम्प अंकन) का विज्ञापन
2. मेघदूत पोस्टकार्ड पर स्थान का प्रायोजन (स्पॉन्सरशिप)
3. पेपर पत्रों का प्रसार का प्रायोजन (स्पॉन्सरशिप) दर : रु. 1000 प्रति पैकेट, प्रतिपूरक भारतीय पत्रों रु. 900.00 प्रति पैकेट
4. डाकघर परिसर में होर्डिंग लगाकर विज्ञापन दर रु. 5.50 प्रति वर्ग फीट प्रति माह
5. डाकघर के अन्दर या बाहर शोकेस अथवा बोर्ड लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/– प्रति वर्ग फुट प्रति माह
6. डाकघर के पत्रों पर स्टाम्प कैंसिलेशन की छाप लगाकर विज्ञापन दर रु. 120/– प्रति छाप प्रतिदिन अधिकतम रु. 400/-
7. मेघदूत पोस्ट कार्ड के माध्यम से विज्ञापन मेघदूत पोस्ट कार्ड के आधे भाग पर उत्पाद का विज्ञापन : दर रु. 2/- प्रति पोस्ट कार्ड। मेघदूत पोस्ट कार्ड का विक्रय मूल्य केवल 25 पैसे मात्र।

SIDDHYOG Postal Regd. No: Ag. 19/06-08

december 2007

प्रेषक कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उपचारों का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सैंयाँई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER

BOOK-POST

श्री/सुश्री

संस्थापक:– योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. रामलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय प्रेस एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सैंयाँई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य प्र. (डॉ.) रामलाल शर्मा